श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

रास पंचाध्याय (10.29)

भक्तों मे ज्यों गोपी श्रेष्ठ, मुनियों में ज्यों व्यास।
पुराणों में ज्यों भागवतम्, लीला में महारास।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

भगवानपि ता रात्रीः(श्), शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं(म्) मनश्चक्रे, योगमायामुपाश्रितः ॥ 1॥

शरदोत् + फुल्ल+ मल्लिकाः, योगमाया+ मुपाश्रितः

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित्! शरद् ऋतु थी। उसके कारण बेला, चमेली आदि सुगन्धित पुष्प खिलकर महँ महँ महँक रहे थे। भगवान्ने चीरहरणके समय गोपियोंको जिन रात्रियोंका सङ्केत किया था, वे सब की सब पुञ्जीभूत होकर एक ही रात्रिके रूपमें उल्लसित हो रही थीं। भगवान्ने उन्हें देखा, देखकर दिव्य बनाया। गोपियाँ तो चाहती ही थीं। अब भगवान् ने भी अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके सहारे उन्हें निमित्त बनाकर रसमयी रासक्रीडा करनेका सङ्कल्प किया। अमना होनेपर भी उन्होंने अपने प्रेमियोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये मन स्वीकार किया ॥ 1 ॥

तदोडुराजः(ख्) ककुभः(ख्) करैर्मुखं(म्),

प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।

स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्,

प्रियः(फ्) प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ 2॥

विलिम्+ पन् + नरुणेन, चर्षणीना+ मुदगाच् +छुचो

भगवान्के सङ्कल्प करते ही चन्द्रदेवने प्राची दिशाके मुखमण्डलपर अपने शीतल किरणरूपी करकमलोंसे लालिमाकी रोली-केसर मल दी, जैसे बहुत दिनों बाद अपनी प्राणप्रिया पत्नीके पास आकर उसके प्रियतम पतिने उसे आनन्दित करनेके लिये ऐसा किया हो ! इस प्रकार चन्द्रदेवने उदय होकर न केवल पूर्वदिशाका, प्रत्युत संसारके समस्त चर-अचर प्राणियोंका सन्ताप — जो दिनमें शरत्कालीन प्रखर सूर्य-रश्मियोंके कारण बढ़ गया था दूर कर दिया ॥ 2 ॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं(म्),

रमाननाभं(न्) नवकुं(ङ्)कुमारुणम्।

वनं(ञ्) च तत्कोमलगोभिरं(ञ्)जितं(ञ्),

जगौ कलं(वँ) वामदृशां(म्) मनोहरम् ॥ 3॥

कुमुद्+ वन्त+ मखण्ड+ मण्डलं(म्),

नव+ कुं(ङ्)कुमा+ रुणम्, तत्को+ मलगो+ भिरं(ञ्)जितं(ञ्)

उस दिन चन्द्रदेवका मण्डल अखण्ड था। पूर्णिमाकी रा थी। वे नूतन केशरके समान त्याल-लाल हो रहे थे, कुछ सोच मिश्रित अभिलाषासे युक्त जान पड़ते थे। उनका मुखमण्डल | लक्ष्मीजीके समान मालूम हो रहा था। उनकी कोमल किरणोंसे सारा वन अनुरागके रंग में रंग गया था। वनके कोने-कोने में उन्होंने अपनी चाँदनीके द्वारा अमृतका समुद्र उड़ेल दिया था। भगवान् श्रीकृष्णने अपने दिव्य उज्ज्वल रसके उद्दीपनकी पूरी सामग्री उन्हें और उस वनको देखकर अपनी बाँसुरीपर वजसुन्दरियोंके मनको हरण करनेवाली कामबीज 'क्री' की अस्पष्ट एवं मधुर तान छेड़ी ॥ 3 ॥

निशम्य गीतं(न्) तदनङ्गवर्धनं(वँ),

व्रजस्त्रियः(ख्) कृष्णगृहीतमानसाः ।

आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः(स्),

स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ 4॥

तदनङ्ग+वर्धनं(वँ), कृष्ण+ गृही+ तमानसाः, आजग्मुरन्+ योन्य+ मलक्षितो+ द्यमाः(स्)

भगवान्का वह वंशीवादन भगवान्के प्रेमको, उनके मिलनकी लालसाको अत्यन्त उकसानेवाला - बढ़ानेवाला था। यों तो श्यामसुन्दरने पहलेसे ही गोपियोंके मनको अपने वशमें कर रखा था। अब तो उनके मनकी सारी वस्तुएँ—भय, सङ्कोच, धैर्य, मर्यादा आदिकी वृत्तियाँ भी छीन लीं वंशीध्वनि सुनते ही उनकी विचित्र गति हो गयी। जिन्होंने एक साथ साधना की थी श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये, वे गोपियाँ भी एक-दूसरेको सूचना न देकर—यहाँतक कि एक-दूसरेसे अपनी चेष्टाको छिपाकर जहाँ वे थे, वहाँके लिये चल पड़ीं। परीक्षित्! वे इतने वेगसे चली थीं कि उनके कानोंके कुण्डल झोंके खा रहे थे ॥ 4 ॥

दुहन्त्योऽभिययुः(ख्) काश्चिद्, दोहं(म्) हित्वा समुत्सुकाः ।

पयोऽधिश्रित्य सं(यँ)याव- मनुद्वास्यापरा ययुः ॥ 5॥

दुहन्त्योऽ+भिययुः(ख्), पयोऽ+ धिश्रित्य, मनुद् + वास् + यापरा

वंशीध्वनि सुनकर जो गोपियाँ दूध दुह रही थीं, वे अत्यन्त उत्सुकतावश दूध दुहना छोड़कर चल पड़ीं। जो चूल्हेपर दूध औंटा रहीं थीं, वे उफनता हुआ दूध छोड़कर और जो लपसी |पका रही थीं वे पकी हुई लपसी बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चल दीं ॥ 5 ॥

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा, पाययन्त्यः(श्) शिशून् पयः ।

शुश्रूषन्त्यः(फ्) पतीन् काश्चि- दश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ 6॥

परिवे+ षयन्त्यस्+ तद्+ धित्वा, शुश्रू+षन्त्यः(फ्), दश् + नन्त्योऽ+ पास्य

जो भोजन परस रही थीं वे परसना छोड़कर, जो छोटे-छोटे बच्चोंको दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर जो पतियों की सेवा-शुश्रूषा कर रही थी वे सेवाशुश्रूषा छोड़कर और जो स्वयं भोजन कर रही थीं वे भोजन करना छोड़कर अपने कृष्णप्यारेके पास चल पड़ीं ॥ 6 ॥

लिम्पन्त्यः(फ्) प्रमृजन्त्योऽन्या, अं(ञ्)जन्त्यः(ख्) काश्च लोचने ।

व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः(ख्), काश्चित् कृष्णान्तिकं(यँ) ययुः ॥ 7॥

प्रमृजन्+ त्योऽन्या, व्यत्यस्+ तवस्त्रा+भरणाः(ख्)

कोई कोई गोपी अपने शरीरमें अङ्गराग चन्दन और उबटन लगा रही थीं और कुछ असमें अंजन लगा रही थीं। वे उन्हें छोड़कर तथा उलटे-पलटे वस्त्र धारणकर श्रीकृष्णके पास पहुँचनेके लिये चल पड़ीं ॥ 7 ॥

ता वार्यमाणाः(फ्) पतिभिः(फ्), पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।

गोविन्दापहृतात्मानो, न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ 8॥

पितृभिर् + भ्रातृबन्धुभिः, गोविन्दा+ पहृतात् + मानो

पिता और पतियोंने, भाई और जाति वधुओंने उन्हें रोका, उनकी मङ्गलमयी प्रेमयात्रा डाला। परन्तु वे इतनी मोहित हो गयी थीं कि रोकनेपर भी न स्त्री न रुक सकीं रुकती कैसे? विश्वविमोहन श्रीकृष्ण उनके प्राण, मन और आत्मा सब कुछका अपहरण जो कर लिया था।॥ 8 ॥

अन्तर्गृहगताः(ख्) काश्चिद्- गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।

कृष्णं(न्) तद्भावनायुक्ता, दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ 9॥

अन्तर्+ गृहगताः(ख्),गोप्योऽ+लब्ध+ विनिर्गमाः, तद्+ भावना+ युक्ता, दध्युर्मी+लितलोचनाः

परीक्षित् उस समय कुछ गोपियाँ घरों के भीतर थीं। उन्हें बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला। तब उन्होंने अपने नेत्र दलिये और बड़ी तन्मयतासे श्रीकृष्ण के सौन्दर्य,माधुर्य और लीलाओंका ध्यान करने लगीं॥ 9 ॥

दुः(स्)सहप्रेष्ठविरह- तीव्रतापधुताशुभाः ।

ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेष- निर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥ 10॥

दुः(स्)सह+ प्रेष्ठ+ विरह, तीव्रता+ पधुता+ शुभाः ,ध्या+ नप्राप्ता+ च्युताश्लेष,

परीक्षित् | अपने परम प्रियतम श्रीकृष्णके असा विरहकी तीव्र वेदनासे उनके हृदयमें इतनी व्यथा - इतनी जलन हुई कि उनमें जो कुछ अशुभ संस्कारोंका लेशमात्र अवशेष था, वह भस्म हो गया। इसके बाद तुरंत ही ध्यान लग गया। ध्यानमें उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने मन-ही-मन बड़े प्रेमसे, बड़े आवेगसे उनका आलिङ्गन किया। उस समय उन्हें इतना सुख, इतनी शान्ति मिली कि उनके सब-के-सब पुण्यके संस्कार एक साथ ही क्षीण हो गये ॥ 10 ॥

तमेव परमात्मानं(ञ्),जारबुद्ध्यापि सङ्गताः।
जहुर्गुणमयं(न्) देहं(म्), सद्यः(फ्) प्रक्षीणबन्धनाः ॥ 11॥

जार+ बुद्ध्यापि, जहुर्+ गुणमयं(न्)

परीक्षित् | यद्यपि उनका उस समय श्रीकृष्णके प्रति जारभाव भी था; तथापि कहीं सत्य वस्तु भी भावकी अपेक्षा रखती है ? उन्होंने जिनका आलिङ्गन किया, चाहे किसी भी भावसे किया हो, वे स्वयं परमात्मा ही तो थे । इसलिये उन्होंने पाप और पुण्यरूप कर्मके परिणामसे बने हुए गुणमय शरीरका परित्याग कर दिया। (भगवान्की लीला सम्मिलित होनेके योग्य दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया।) इस शरीरसे भोगे जानेवाले कर्मबन्धन तो ध्यानके समय ही छिन्न-भिन्न हो चुके थे ॥ 11 ॥

राजोवाच

कृष्णं(वँ) विदुः(फ्) परं(ङ्) कान्तं(न्), न तु ब्रह्मतया मुने ।
गुणप्रवाहोपरमस्- तासां(ङ्) गुणधियां(ङ्) कथम् ॥ 12॥

गुण+ प्रवाहो+ परमस्

राजा परीक्षित्ने पूछा- भगवन्! गोपियाँ तो भगवान् श्रीकृष्णको केवल अपना परम प्रियतम ही मानती थीं। उनका उनमें ब्रह्मभाव नहीं था। इस प्रकार उनकी दृष्टि प्राकृत गुणोंमें ही आसक्त दीखती है। ऐसी स्थितिमें उनके लिये गुणोंके प्रवाहरूप इस संसारकी निवृत्ति कैसे सम्भव हुई ? ॥ 12 ॥

श्रीशुक उवाच

उक्तं(म्) पुरस्तादेतत्ते, चैद्यः(स्) सिद्धिं(यँ) यथा गतः ।
द्विषन्नपि हृषीकेशं(ङ्), किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ 13॥

पुरस्ता+ देतत् + ते, द्विषन् + नपि, किमुताधो+ क्षजप्रियाः

श्रीशुकदेवजीने कहा- परीक्षित्! मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि चेदिराज शिशुपाल भगवान्के प्रति द्वेष भाव रखनेपर भी अपने प्राकृत शरीरको छोड़कर अप्राकृत शरीरसे उनका पार्षद हो गया। ऐसी स्थितिमें जो समस्त प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत भगवान् श्रीकृष्णकी प्यारी हैं और उनसे अनन्य प्रेम करती है, वे गोपियाँ उन्हें प्राप्त हो जायँ — इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है ॥ 13 ॥

नृणां(न्) निः(श्)श्रेयसार्थाय, व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य , निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ 14॥

निः(श्)श्रे+ यसार्थाय, व्यक्तिर् + भगवतो, अव्ययस् + याप्रमे+ यस्य

परीक्षित् । वास्तवमें भगवान् प्रकृतिसम्बन्धी वृद्धि-विनाश, प्रमाण- प्रमेव और गुणगुणीभावसे रहित हैं। वे अचिन्त्य अनन्त अप्राकृत परम कल्याणस्वरूप गुणोंके एकमात्र आश्रय है। उन्होंने यह जो अपनेको तथा अपनी

लीलाको प्रकट किया है, उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि जीव उसके सहारे अपना परम कल्याण सम्पादन करे ॥ 14 ॥

कामं(ङ्) क्रोधं(म्) भयं(म्) स्नेह- मैक्यं(म्) सौहृदमेव च ।

नित्यं(म्) हरौ विदधतो, यान्ति तन्मयतां(म्) हि ते ॥ 15॥

इसलिये भगवान् से केवल सम्बन्ध हो जाना चाहिये। वह सम्बन्ध चाहे जैसा हो— कामका हो, क्रोधका हो या भयका हो; स्नेह, नातेदारी या सौहार्दका हो। चाहे जिस भावसे भगवान् नित्य-निरन्तर अपनी वृत्तियाँ जोड़ दी जायें, वे भगवान् से ही जुड़ती है। इसलिये वृत्तियों भगो जाती हैं और उस जीवको भगवान्की ही प्राप्ति होती है ॥ 15 ॥

न चैवं(वँ) विस्मयः(ख्) कार्यो, भवता भगवत्यजे ।

योगेश्वरेश्वरे कृष्णे, यत एतद् विमुच्यते ॥ 16॥

परीक्षित्! तुम्हारे जैसे परम भागवत भगवान्का रहस्य जाननेवाले भक्तको श्रीकृष्ण के सम्बन्धमें ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये। योगेश्वरोंके भी ईश्वर अजन्मा भगवान् के लिये भी यह कोई आर्य की बात है? अरे उनके सङ्कल्पमाभौहोंके इशारेसे सारे जगत्का परम कल्याण हो सकता है ॥ 16 ॥

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता, भगवान् व्रजयोषितः ।

अवदद् वदतां(म्) श्रेष्ठो, वाचः(फ्) पेशैर्विमोहयन् ॥ 17॥

दृष्ट्वान् + तिकमायाता, पेशैर् + विमो+ हयन्

जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि व्रजकी अनुपम विभूतियाँ गोपियाँ मेरे बिलकुल पास आ गयी है, तब उन्होंने अपनी विनोदभरी वाक्चातुरीसे उन्हें मोहित करते हुए कहा—क्यों न हो—भूत, भविष्य और वर्तमानकालके जितने वक्ता है, उनमें वे ही तो सर्वश्रेष्ठ है ॥ 17 ॥

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं(वँ) वो महाभागाः(फ्), प्रियं(ङ्) किं(ङ्) करवाणि वः ।

व्रजस्यानामयं(ङ्) कच्चिद्, ब्रूतागमनकारणम् ॥ 18॥

व्रजस्या+ नामयं(ङ्), ब्रूता+गमनका+रणम्

भगवान् श्रीकृष्णने कहा- महाभाग्यवती गोपियो। तुम्हारा स्वागत है। बतलाओ, तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये मैं कौन-सा काम करूँ ? व्रजमें तो सब कुशल-मङ्गल हैन ? कहो, इस समय यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ गयी ? ॥ 18 ॥

रजन्येषा घोररूपा, घोरसत्त्वनिषेविता ।

प्रतियात व्रजं(न्) नेह, स्थेयं(म्) स्त्रीभिः(स्) सुमध्यमाः ॥ 19॥

घोर+ सत्त्व+ निषेविता

सुन्दरी गोपियो ! रातका समय है, यह स्वयं ही बड़ा भयावना होता है और इसमें बड़े-बड़े भयावने जीव जन्तु इधर-उधर घूमते रहते हैं। अतः तुम सब तुरंत व्रजमें लौट जाओ। रातके समय घोर जंगलमें स्त्रियोंको नहीं रुकना चाहिये ॥ 19 ॥

मातरः(फ्) पितरः(फ्) पुत्रा, भ्रातरः(फ्) पतयश्च वः ।

विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो, मा कृद्वं(म्) बन्धुसाध्वसम् ॥ 20॥

विचिन् + वन्ति, ह्य+ पश्यन्तो, बन्धु+ साध्व+सम्

तुम्हें न देखकर तुम्हारे माँ-बाप, पति-पुत्र | और भाई बन्धु ढूँढ रहे होंगे। उन्हें भयमें न डालो ॥ 20 ॥

दृष्टं(वँ) वनं(ङ्) कुसुमितं(म्), राकेशकररं(ञ्)जितम् ।

यमुनानिललीलैजत्-तरुपल्लवशोभितम् ॥ 21॥

यमुना+ निललीलै+ जत्, तरु+ पल्लवशो+ भितम्

तुमलोगोंने रंग-बिरंगे पुष्पोंसे लदे हुए इस वनकी शोभाको देखा। पूर्ण चन्द्रमाकी कोमल रश्मियोंसे यह रंगा हुआ है, मानो उन्होंने अपने हाथों चित्रकारी की हो; और बमुनाजीके जलका स्पर्श करके बहनेवाले शीतल समीरकी मन्द मन्द गति से हिलते हुए ये वृक्षोंके पत्ते तो इस वनकी शोभाको और भी बढ़ा रहे हैं। परन्तु अब तो तुमलोगोंने यह सब कुछ देख लिया ॥ 21 ॥

तद् यात मा चिरं(ङ्) गोष्ठं(म्), शुश्रूषध्वं(म्) पतीन् सतीः ।

क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च, तान् पाययत दुह्यत ॥ 22॥

शुश्रू+ षध्वं(म्), क्रन्+ दन्ति

अब देर मत करो, शीघ्र से शीघ्र व्रजमें लौट जाओ। तुमलोग कुलीन स्त्री हो और स्वयं भी सती हो; जाओ, अपने पतियों की और सतियोंकी सेवा-शुश्रूषा करो। देखो, तुम्हारे घरके नन्हे नन्हे बच्चे और गौओके बछड़े रो-रंभा रहे हैं; उन्हें दूध पिलाओ, गौएँ दुहरे ॥ 22 ॥

अथवा मदभिस्नेहाद्-भवत्यो यन्त्रिताशयाः ।

आगता ह्युपपन्नं(वँ) वः(फ्), प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥ 23॥

मदभिस् + नेहाद् , यन्त्रिता+ शयाः, ह्युप+ पन्नं(वँ)

अथवा यदि मेरे प्रेमसे परवश होकर तुमलोग यहाँ आयी हो तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं हुई, यह तो तुम्हारे योग्य ही है; क्योंकि जगत्के पशु-पक्षीतक मुझसे प्रेम करते हैं, मुझे | देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ 23 ॥

भर्तुः(श्) शुश्रूषणं(म्) स्त्रीणां(म्), परो धर्मो ह्यमायया ।

तद्बन्धूनां(ञ्) च कल्याण्यः(फ्), प्रजानां(ञ्) चानुपोषणम् ॥ 24॥

तद्+ बन्धूनां(ञ्)

कल्याणी गोपियो ! स्त्रियोंका परम धर्म यही है कि वे पति और उसके भाई-वधुओंकी निष्कपटभावसे सेवा करें और सन्तानका पालन-पोषण करें. ॥ 24 ॥

दुः(श्)शीलो दुर्भगो वृद्धो, जडो रोग्यधनोऽपि वा ।

पतिः(स्) स्त्रीभिर्न हातव्यो, लोकेप्सुभिरपातकी ॥ 25॥

लोकेप् + सुभिरपा+ तकी

जिन स्त्रियोंको उत्तम लोक प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, वे पातकीको छोड़कर और किसी भी प्रकारके पतिका परित्याग न करें। भले ही वह बुरे भाव भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी या निर्धन ही क्यों न हो ॥ 25 ॥

अस्वर्ग्यमयशस्यं(ञ्) च, फल्गु कृच्छ्रं(म्) भयावहम् ।
जुगुप्सितं(ञ्) च सर्वत्र, औपपत्यं(ङ्) कुलस्त्रियाः ॥ 26॥

अस्+ वर्ग्य+ मयशस्यं(ञ्), जुगुप्+ सितं(ञ्), औप+ पत्यं(ङ्)

कुलीन स्त्रियोंके लिये जार पुरुषकी सेवा सब तरहसे निन्दनीय ही है। है | इससे उनका परलोक बिगड़ता है, स्वर्ग नहीं मिलता, इस लोकमे अपयश होता है। यह कुकर्म स्वयं तो अत्यन्त तुच्छ, क्षणिक है ही, इसमें प्रत्यक्ष-वर्तमानमें भी कष्ट ही कष्ट है। मोक्ष आदिको तो बात हो कौन करे, यह साक्षात् परम भय-नरक आदिका हेतु है ॥ 26 ॥

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्- मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा सन्निकर्षेण, प्रतियात ततो गृहान् ॥ 27॥

सन् + निकर्षेण

गोपियो। मेरी लीला और गुणोंके श्रवणसे, रूपके दर्शनसे, उन सबके कीर्तन और ध्यानसे मेरे प्रति जैसे अनन्य प्रेमकी प्राप्ति होती है, वैसे प्रेमकी प्राप्ति पास रहनेसे नहीं होती। इसलिये तुमलोग अभी अपने-अपने घर लौट जाओ ॥ 27 ॥

श्रीशुक उवाच

इति विप्रियमाकर्ण्य ,गोप्यो गोविन्दभाषितम् ।
विषण्णा भग्नसं(ङ्)कल्पाश्-चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ 28॥

विप्रियमा+ कर्ण्य, भग्न+ सं(ङ्)कल्पाश्, चिन्तामा+ पुर्दुरत् + ययाम्

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णका यह अप्रिय भाषण सुनकर गोपियाँ उदास, खिन्न हो गयीं। उनकी आशा टूट गयी। वे चिन्ताके अथाह एवं अपार समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ 28 ॥

कृत्वा मुखान्यव शुचः(श्) श्वसनेन शुष्यद्
बिम्बाधराणि चरणेन भुवं(म्) लिखन्त्यः ।
अस्रैरुपात्तमषिभिः(ख्) कुचकुं(ङ्)कुमानि,
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः(स्) स्म तूष्णीम् ॥ 29॥

अस्+ रैरुपात्+ तमषिभिः(ख्), तस्थुर्+ मृजन्त्य

उनके बिम्बाफल (पके हुए कुँदरू) के समान लाल-लाल अधर शोकके कारण चलनेवाली लम्बी और गरम साँससे सूख गये। उन्होंने अपने मुँह नीचेकी ओर लटका लिये, वे पैरके नखोंसे धरती कुरेदने लगीं। नेत्रोंसे दुःखके आँसू बह बहकर काजलके साथ वक्षःस्थलपर पहुँचने और वहाँ लगी हुई केशरको धोने लगे। | उनका हृदय दुःखसे इतना भर गया कि वे कुछ बोल न सकीं, चुपचाप खड़ी रह गयीं ॥ 29 ॥

प्रेष्ठं(म्) प्रियेतरमिव* प्रतिभाषमाणं(ङ्),

कृ*ष्णं(न्) तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ।

नेत्रे विमृ*ज्य रुदितोपहते स्म किं(ञ्)चित्

सं(म्)रम्भ*गद्गदगिरोऽब्रुवतानुर*क्ताः ॥ 30॥

तदर्थ+ विनिवर्+ तित+ सर्वकामाः, सं(म्)रम्भ+ गद्गदगिरोऽ+ ब्रुवता+ नुरक्ताः

गोपियोंने अपने प्यारे श्यामसुन्दरके लिये सारी कामनाएँ, सारे भोग छोड़ दिये थे। श्रीकृष्णमें उनका अनन्य अनुराग, परम प्रेम था। जब उन्होंने अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी यह निष्ठुरतासे भरी बात सुनी जो बड़ी ही अप्रिय-सी मालूम हो रही थी, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। आँखें रोते-रोते लाल हो गयीं आँसुओंके मारे गय उन्होंने धीरज धारण करके अपनी आँखोंके आँसू पोछे और फिर प्रणयकोपके कारण वे गद्गद वाणीसे कहने लगीं॥ 30 ॥

गोप्य ऊचुः

मैवं(वँ) विभोऽर्हति भवान् गदितुं(न्) नृशं(म्)सं(म्),

सन्त्य*ज्य सर्वविषयां(म्)स्तव पादमूलम् ।

भ*क्ता भज*स्व दुरव*ग्रह मा त्यजास्मान्

देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमु*क्षून् ॥ 31॥

सन् + त्यज्य

गोपियोंने कहा- प्यारे श्रीकृष्ण तुम घट-घट व्यापी हो। हमारे हृदयकी बात जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरताभरे वचन नहीं कहने चाहिये। हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि तुम स्वतन्त्र और हठीले हो। तुमपर हमारा कोई वश नहीं है। फिर भी तुम अपनी ओरसे, जैसे आदिपुरुष भगवान् नारायण कृपा करके अपने मुमुक्षु भक्तोंसे प्रेम करते हैं, वैसे ही हमें स्वीकार कर लो। हमारा त्याग मत करो ॥ 31 ॥

य*त्पत्य*पत्यसुहृदामनुवृत्ति*रङ्ग

स्त्रीणां(म्) स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।

अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे

प्रेष्ठो भवां(म्)स्तनुभृतां(ङ्) किल बं*धुरात्मा ॥ 32॥

यत्पत्+यपत्य+सुहृदा+मनुवृत्तिरङ्ग, अस्त्वे+ वमे+तदुपदे+शपदे, भवां(म्)स्+ तनुभृतां(ङ्)

प्यारे श्यामसुन्दर । तुम सब धर्मोका रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि 'अपने पति, पुत्र और भाई-बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है अक्षरशः ठीक है। परन्तु इस उपदेशके अनुसार हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि तुम्हीं सब उपदेशोंके पद (चरम लक्ष्य) हो; साक्षात् भगवान् हो। तुम्हीं समस्त शरीरधारियोंके सुहृद् हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो । ॥ 32 ॥

कुर्वन्ति हि* त्वयि रतिं(ङ्) कुशलाः(स्) स्व आत्मन्

नित्य*प्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः(ख्) किम् ।

तन्नः(फ्) प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या

आशां(न्) भृतां(न्) त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ 33॥

पतिसुता+ दिभिरार्+ तिदैः(ख्),

आत्मज्ञानमे निपुण महापुरुष तुमसे ही प्रेम करते हैं; क्योंकि तुम नित्य प्रिय एवं अपने ही आत्मा हो। अनित्य एवं दुखद पति-पुत्रादिसे क्या प्रयोजन है ? परमेश्वर इसलिये हमपर प्रसन्न होओ। कृपा करो। कमलनयन ! चिरकालसे तुम्हारे प्रति पाली-पोसी आशा अभिलाषाकी लहलहाती लताका छेदन मत करो ॥ 33 ॥

चित्तं(म्) सुखेन भवतापहृतं(ङ्) गृहेषु

यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।

पादौ पदं(न्) न चलतस्तव पादमूलाद्-

यामः(ख्) कथं(वँ) व्रजमथो करवाम किं(वँ) वा ॥ 34॥

यन् + निर् + विशत्युत

मनमोहन ! अबतक हमारा चित्त घरके काम-धंधो लगता था। इसीसे हमारे हाथ भी उनमें रमे हुए थे। परन्तु तुमने हमारे देखते-देखते हमारा वह चित लूट लिया। इसमें तुम्हें कोई कठिनाई भी नहीं उठानी पड़ी, तुम तो सुखस्वरूप हो न ! परन्तु | अब तो हमारी गति-मति निराली ही हो गयी है। हमारे ये पैर तुम्हारे चरणकमलोंको छोड़कर एक पग भी हटनेके लिये तैयार नहीं है, नहीं हट रहे हैं। फिर हम व्रजमें कैसे जाये ? और यदि वहाँ जाये भी तो करें क्या ? ॥ 34 ॥

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण

हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।

नो चेद् वयं(वँ) विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा

ध्यानेन याम पदयोः(फ्) पदवीं(म्) सखे ते ॥ 35॥

नस् + त्वदधरा+मृतपू+ रकेण,

हासावलो+ककलगी+ तजहृच् + छयाग्निम्, विरहजाग् + न्युप+युक्तदेहा

प्राणवल्लभ । हमारे प्यारे सखा तुम्हारी मन्द मन्द मधुर मुस्कान, प्रेमभरी चितवन और मनोहर संगीतने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेम और मिलनकी आग धधका दी है। उसे तुम अपने अधरोंकी रसधारासे बुझा दो। नहीं तो प्रियतम हम सच कहती है, तुम्हारी विरह व्यथाकी आगसे हम अपने-अपने शरीर जला देगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंको प्राप्त करेंगी ॥ 35 ॥

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं(म्) रमाया

दत्तक्षणं(ङ्) क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।

अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग

स्थातुं(न्) त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ 36॥

यर्+ ह्यम् + बुजाक्ष, क्वचिदरण् + यजनप्रियस्य, अस् + प्राक्ष्म, नान् + यसमक्ष+ मङ्ग

प्यारे कमलनयन ! तुम वनवासियोंके प्यारे हो और वे भी तुमसे बहुत प्रेम करते हैं। इससे प्रायः तुम उन्हींके पास रहते हो। यहाँतक कि तुम्हारे जिन चरणकमलोंकी सेवाका अवसर स्वयं लक्ष्मीजीको कभी-कभी ही मिलता है, उन्हीं चरणोंका स्पर्श हमें प्राप्त हुआ। जिस दिन यह सौभाग्य हमें मिला और तुमने हमें स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी दिनसे हम और किसीके सामने एक क्षणके लिये भी ठहरनेमें असमर्थ हो गयी हैं- पति पुत्रादिकोंकी सेवा तो दूर रही ॥ 36 ॥

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या
लब्ध्वापि वक्षसि पदं(ङ्) किल भृत्यजुष्टम् ।
यस्याः(स्) स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्-
तद्वद् वयं(ञ्) च तव पादरजः(फ्) प्रपन्नाः ॥ 37॥

श्रीर्यत् + पदाम् + बुजरजश् + चकमे, स्ववी+ क्षणकृतेऽन् + यसुरप्रयासस्

हमारे स्वामी ! जिन लक्ष्मीजीका कृपाकटाक्ष प्राप्त करनेके लिये बड़े-बड़े देवता तपस्या करते रहते हैं, वही लक्ष्मीजी तुम्हारे वक्षःस्थलमें बिना किसीकी प्रतिद्वन्द्विताके स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी अपनी सौत तुलसीके साथ तुम्हारे चरणोंकी रज पानेकी अभिलाषा किया करती हैं। अबतकके सभी भक्तोंने उस चरणरजका सेवन किया है। उन्होंके समान हम भी तुम्हारी उसी चरणरजकी शरण में आयी हैं॥ 37 ॥

तन्नः(फ्) प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं(म्),
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-
तप्तात्मनां(म्) पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ 38॥

वसतीस्+ त्वदुपा+ सनाशाः, त्वत्+ सुन्दरस्+ मितनिरी+ क्षणतीव्र+ काम

भगवन्! अबतक जिसने भी तुम्हारे चरणोंकी शरण ली, उसके सारे कष्ट तुमने मिटा दिये। अब तुम हमपर कृपा करो। हमें भी अपने प्रसादका भाजन बनाओ। हम तुम्हारी सेवा करनेकी आशा-अभिलाषासे घर, गाँव, कुटुम्ब - सब कुछ छोड़कर तुम्हारे युगल चरणोंकी शरणमें आयी हैं। प्रियतम वहाँ तो तुम्हारी आराधनाके लिये अवकाश ही नहीं है। पुरुषभूषण! पुरुषोत्तम! तुम्हारी मधुर मुसकान और चारु चितवनने हमारे हृदयमें प्रेमकी मिलनकी आकाङ्क्षाकी आग धधका दी है; हमारा रोम-रोम उससे जल रहा है। तुम हमें अपनी दासीके रूपमें स्वीकार कर लो। हमें अपनी सेवाका अवसर दो ॥ 38 ॥

वीक्ष्यालकावृतमुखं(न्) तव कुण्डलश्री-
गण्डस्थलाधरसुधं(म्) हसितावलोकम् ।
दत्ताभयं(ञ्) च भुजदण्डयुगं(वँ) विलोक्य,
वक्षः(श्)श्रियैकरमणं(ञ्) च भवाम दास्यः ॥ 39॥

वीक्ष्या+ लका+ वृतमुखं(न्), गण्डस्+ थला+ धरसुधं(म्), वक्षः(श्)+ श्रियै+ करमणं(ञ्)

प्रियतम ! तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिसपर घुँघराली अलके झलक रही हैं; तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिनपर सुन्दर-सुन्दर कुण्डल अपना अनन्त सौन्दर्यबिखेर रहे हैं; तुम्हारे ये मधुर अधर, जिनकी सुधा सुधाको भी जानेवाली है, तुम्हारी यह नयनमनोहारी चितवन, जो मन्द मन्द मुसकानसे उल्लसित हो रही है; तुम्हारी ये दोनों

भुजाएँ, जो शरणागतोंको अभयदान देनेमें अत्यन्त उदार हैं और तुम्हारा यह वक्षःस्थल, जो लक्ष्मीजीका सौन्दर्यकी एकमात्र देवीका नित्य क्रीडास्थल है, देखकर हम सब तुम्हारी दासी हो गयी है ॥ 39 ॥

का स्त्र्यङ्ग* ते कलपदायतमूर्च्छितेन,

सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।

त्रैलोक्यसौभगमिदं(ञ्) च निरीक्ष्य रूपं(यँ),

यद् गोद्विज*द्रुममृगाः(फ्) पुलकान्यबिभ्रन्* ॥ 40॥

कलपदा+ यतमूर्च् + छितेन ,सम्मोहिताऽऽर्+ यचरितान्+ न ,त्रैलोक्यसौ+ भगमिदं(ञ्)

गोद्विज+ द्रुम+ मृगाः(फ्) ,पुलकान्+ यबिभ्रन्

प्यारे श्यामसुन्दर ! तीनों लोकोंमें भी और ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोह-क्रमसे विविध प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे युक्त तुम्हारी वंशीकी तान सुनकर तथा इस त्रिलोकसुन्दर मोहिनी मूर्तिको जो अपने एक बूँद सैन्दर्य त्रिलोकीको सौन्दर्यका दान करती है एवं जिसे देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिन भी रोमाशित, पुलकित हो जाते हैं— अपने नेत्रोंसे निहारकर आर्य-मर्यादासे विचलित न हो जाय, कुल-कान और लोकलजाको त्यागकर तुममें अनुरक्त न हो जाय ॥ 40 ॥

व्यक्तं*(म्) भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो,

देवो यथाऽऽदिपुरुषः(स्) सुरलोकगोप्ता ।

तन्नो निधेहि करपं(ङ्)कजमार्तबन्धो*,

तप्तस्तनेषु* च शिरस्सु च किं(ङ्)करीणाम् ॥ 41॥

व्रजभयार्+ तिहरोऽ+ भिजातो ,करपं(ङ्)कज+ मार्तबन्धो

हमसे यह बात छिपी नहीं है कि जैसे भगवान् नारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम व्रजमण्डलका भय और दुःख मिटानेके लिये ही प्रकट हुए हो और यह भी स्पष्ट ही है कि दीन-दुखियोंपर तुम्हारा बड़ा प्रेम, बड़ी कृपा है। प्रियतम! हम भी बड़ी दुःखिनी हैं। तुम्हारे मिलनकी आकांक्षाकी आगसे हमारा वक्षःस्थल जल रहा है। तुम अपनी इन दासियोंके वक्षःस्थल और सिरपर अपने कोमल करकमल रखकर इन्हें अपना लो; हमें जीवनदान दो ॥ 41 ॥

श्रीशुक उवाच

इति विक्लवितं*(न्) तासां(म्), श्रुत्वा* योगेश्वरेश्वरः ।

प्रहस्य* सदयं(ङ्) गोपी- रात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ 42॥

रात्मा+ रामोऽप्यरी+ रमत्

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शिवादि योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। जब उन्होंने गोपियोंकी व्यथा और व्याकुलतासे भरी वाणी सुनी, तब उनका हृदय दयासे भर गया और यद्यपि वे आत्माराम है अपने-आपमें ही रमण करते रहते हैं, उन्हें अपने अतिरिक्त और किसी भी बाह्य वस्तुको अपेक्षा नहीं है, फिर भी उन्होंने हँसकर | उनके साथ क्रीडा प्रारम्भ की ॥ 42 ॥

ताभिः(स्) समेताभिरुदारचेष्टितः(फ्),

प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ।

उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्-

व्यरोचतैणांङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥ 43॥

समेता+ भिरुदा+ रचेष्टितः(फ्), प्रियेक्षणोत्+ फुल्+ लमुखी+ भिरच्युतः

उदा+ रहासद्+ विजकुन्+ ददी+ धितिर् ,इवो+ डुभिर्+ वृतः

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भाव-भङ्गी और चेष्टाएँ गोपियोंके अनुकूल कर दीं फिर भी वे अपने स्वरूपमें ज्यों-के-त्यों एकरस स्थित थे, अच्युत थे। जब वे खुलकर हँसते, तब उनके उज्ज्वल-उज्ज्वल दाँत कुन्दकलीके समान जान पड़ते थे। उनकी प्रेमभरी चितवनसे और उनके दर्शनके आनन्दसे गोपियोंका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया। वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। उस समय श्रीकृष्णकी ऐसी शोभा हुई, मानो अपनी पत्नी तारिकाओंसे घिरे हुए चन्द्रमा ही हों ॥ 43 ॥

उपगीयमान उद्गायन्, वनिताशतयूथपः ।

मालां(म्) बिभ्रद् वैजयन्तीं(वँ), व्यचरन्मण्डयन् वनम् ॥ 44॥

वनिता+ शत+ यूथपः ,व्यचरन्+ मण्डयन्

गोपियोंके शत-शत यूथोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला पहने वृन्दावनको शोभायमान करते हुए विचरण करने लगे। कभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णके गुण और लीलाओंका गान करतीं, तो कभी श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेम और सौन्दर्यके गीत गाने लगते ॥ 44 ॥

नद्याः(फ्) पुलिनमाविश्य, गोपीभिर्हिमवालुकम् ।

रेमे तत्तरलानन्द- कुमुदामोदवायुना ॥ 45॥

पुलिनमा+ विश्य, गोपीभिर्+ हिमवा+ लुकम् ,तत्+तरलानन्द ,कुमुदा+ मोदवायुना

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ यमुनाजीके पावन पुलिनपर, जो कपूरके समान चमकीली बालूसे जगमगा रहा था, पदार्पणकिया। वह यमुनाजीकी तरल तरङ्गोंके स्पर्शसे शीतल और कुमुदिनीकी सहज सुगन्धसे सुवासित वायुके द्वारा सेवित हो रहा था। उस आनन्दप्रद पुलिनपर भगवान्ने गोपियोंके साथ क्रीडा की ॥ 45 ॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-

नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।

क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-

मुत्तम्भयन् रतिपतिं(म्) रमयाञ्चकार ॥ 46॥

बाहुप्रसा+ रपरिरम्+ भकरा+ लकोरु, नीवीस्+ तना+ लभननर्+ मनखाग्र+ पातैः

क्ष्वेल्या+ वलो+ कहसितैर्+ व्रजसुन्दरीणा ,मुत्+ तम्भयन्

हाथ फैलाना, आलिङ्गन करना, गोपियोंके हाथ दबाना, उनकी चोटी, जाँघ, नीवी और स्तन आदिका स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवनसे देखना और मुसकाना – इन क्रियाओंके द्वारा

गोपियोंके दिव्य कामरसको, परमोज्ज्वल प्रेमभावको उत्तेजित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें क्रीडाद्वारा आनन्दित करने लगे ॥ 46 ॥

एवं(म्) भगवतः(ख्) कृष्णाल्- लब्धमाना महात्मनः ।
आत्मानं(म्) मेनिरे स्त्रीणां(म्), मानिन्योऽभ्यधिकं(म्) भुवि ॥ 47॥

मानिन्योऽभ्+ यधिकं(म्)

उदारशिरोमणि सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार गोपियोंका सम्मान किया, तब गोपियोंके मनमें ऐसा भाव आया कि संसारकी समस्त स्त्रियोंमें हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं, हमारे समान और कोई नहीं है। वे कुछ मानवती हो गयीं ॥ 47 ॥

तासां(न्) तत् सौभगमदं(वँ्), वीक्ष्य मानं(ञ्) च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय, तत्रैवान्तरधीयत ॥ 48॥

तत्रैवान्+ तरधीयत

जब भगवान्ने देखा कि इन्हें तो अपने सुहागका कुछ गर्व हो आया है और अब मान भी करने लगी हैं, तब वे उनका गर्व शान्त करनेके लिये तथा उनका मान दूर कर प्रसन्न करनेके लिये वहीं— उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये ॥ 48 ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)
दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भगवतो रासक्रीडावर्णनं(न्) नामैकोनत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

रास पंचाध्याय(10.30)

भक्तों मे ज्यों गोपी श्रेष्ठ, मुनियों में ज्यों व्यास।
पुराणों में ज्यों भागवतम्, लीला में महारास।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

अथ त्रिं(म्)शोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अन्तर्हिते भगवति, सहसैव व्रजाङ्गनाः ।
अतप्यं(म्)स्तमचक्षाणाः(ख्), करिण्य इव यूथपम् ॥ 1॥

अतप्+ यं(म्)स्त+ मचक्षाणाः(ख्)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं— परीक्षित! भगवान सहसा अन्तर्धान हो गये। उन्हें न देखकर व्रज युवतियों की वैसी ही दशा हो गयी, जैसे यूथपति गज राज के बिना हथिनियों की होती है। उनका हृदय विरह की ज्वाला से जलने लगा ॥ 1 ॥

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर् -
मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः(फ्) प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ 2॥

गत्या+ नुरागस् + मितविभ्रमे+ क्षितैर् , मनो+ रमाला+ पविहा+ रविभ्रमैः

आक्षिप्त+ चित्ताः(फ्), जगृहुस् + तदात् + मिकाः

भगवान श्रीकृष्ण की मदोन्मत्त गजराजकी-सी चाल, प्रेमभरी मुसकान, विलासभरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप, भिन्न-भिन्न प्रकार की लीलाओं तथा शृङ्गार रस की भाव-भङ्गियोंने उनके चित्तको चुरा लिया था। वे प्रेमकी मतवाली गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयी | और फिर श्रीकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओंका अनुकरण करने लगी ॥ 2 ॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु,

प्रियाः(फ्) प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।

असावहं(न्) त्वित्यबलास्तदात्मिका,

न्यवेदिषुः(ख्) कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ 3॥

गतिस् + मितप्रे+ क्षणभा+ षणादिषु, त्वित् + यबलास्+ तदात्मिका, कृष्णविहा+ रविभ्रमाः

अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की चाल ढाल, हास-विलास और चितवन- बोलन आदिमें श्रीकृष्ण की प्यारी गोपियाँ उनके समान ही बन गयीं; उनके शरीरमें भी वही गति-मति, वही भाव-भङ्गी उतर आयी। वे अपनेको सर्वथा भूलकर श्रीकृष्ण स्वरूप हो गयीं और उंन्ही के लीला-विलास का अनुकरण करतीहुई 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ ' इस प्रकार कहने लगीं ॥ 3 ॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव सं(म्)हता,

विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम् ।

पप्रच्छुराकाशवदन्तरं(म्) बहिर्-

भूतेषु सन्तं(म्) पुरुषं(वँ) वनस्पतीन् ॥ 4॥

विचिक्+ युरुन्+ मत्तकवद्, पप्रच्+छुराका+ शवदन्तरं(म्)

वे सब परस्पर मिलकर ऊँचे स्वरसे उन्हीं के गुणोंका गान करने लगी और मतवाली होकर एक वनसे दूसरे वनमें, एक झाड़ीसे दूसरी झाड़ीमें जा-जाकर श्रीकृष्णको ढूंढने लगीं। परीक्षित् । भगवान् श्रीकृष्ण कहीं दूर थोड़े ही गये थे। वे तो समस्त जड़-चेतन पदार्थों में तथा उनके बाहर भी आकाश के समान एकरस स्थित ही हैं। वे वहीं थे, उन्हींमें थे, परन्तु उन्हें न देखकर गोपियाँ वनस्पतियों से पेड़-पौधोंसे उनका पता पूछने लगीं ॥ 4 ॥

दृष्टो वः(ख्) कच्चिदश्वत्थ, प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ।

नन्दसूनुर्गतो हृत्वा, प्रेमहासावलोकनैः ॥ 5॥

कच्चिदश् + वत्थ, नन्दसू+ नुर्गतो

(गोपियोंने पहले बड़े-बड़े वृक्षोंसे जाकर पूछा) हे पीपल, पाकर और बरगद ! नन्द नन्दन श्याम सुन्दर अपनी प्रेमभरी मुसकान और चितवनसे हमारा मन चुराकर चले गये. हैं। क्या तुम लोगोंने उन्हें देखा है ? ॥ 5 ॥

कच्चित् कुरबकाशोक- नागपुन्नागचम्पकाः ।

रामानुजो मानिनीना- मितो दर्पहरस्मितः ॥ 6॥

नागपुन्ना+ गचम्पकाः

कुरबक, अशोक, नागकेशर, पुन्नाग और चम्पा ! बलरामजी के छोटे भाई, जिनकी मुसकान मात्रसे बड़ी-बड़ी मानिनियों का मान मर्दन हो जाता है, इधर आये थे क्या ?' ॥ 6 ॥

कच्चित्तुलसि कल्याणि, गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद्- दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ 7॥

त्वा+ लिकुलैर्+ बिभ्रद्, दृष्टस्तेऽ+ तिप्रियोऽ+ च्युतः

(अब उन्होंने स्त्रीजातिके पौधोंसे कहा) 'बहिन तुलसी ! तुम्हारा हृदय तो बड़ा कोमल है, तुम तो सभी लोगोंका कल्याण चाहती हो। भगवान्के चरणों में तुम्हारा प्रेम तो है ही, वे भी तुमसे बहुत प्यार करते हैं। तभी तो भौरोंके मंडराते रहनेपर भी वे तुम्हारी माला नहीं उतारते, सर्वदा पहने रहते हैं। क्या तुमने अपने परम प्रियतम श्याम सुन्दरको देखा है ? ॥ 7 ॥

मालत्यदर्शि वः(ख्) कच्चिन्- मल्लिके जाति यूथिके ।
प्रीतिं(वँ) वो जनयन् यातः(ख्), करस्पर्शेन माधवः ॥ 8॥

प्यारी मालती ! मल्लिके ! जाती और जूही ! तुम लोगोंने कदाचित् हमारे प्यारे माधव को देखा होगा। क्या वे अपने कोमल करोंसे स्पर्श कर के तुम्हें आनन्दित करते हुए इधर गये हैं?' ॥ 8 ॥

चूतप्रियालपनसासनकोविदार-
जम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः(श्),
शं(म्)सन्तु कृष्णपदवीं(म्) रहितात्मनां(न्) नः ॥ 9॥

चूतप्रिया+ लपनसा+ सनको+ विदार, जम्ब्वर्क+ बिल्व+ बकुला+ म्रकदम् + बनीपाः

रसाल, प्रियाल, कटहल, पीतशाल कचनार, जामुन, आक, बेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब और नीम तथा अन्यान्य यमुना के तट पर विराजमान सुखी तरुवरो ! तुम्हारा जन्म-जीवन केवल परोपकार के लिये है। श्रीकृष्णके बिना हमारा जीवन सूना हो रहा है। हम बेहोश हो रही है। तुम हमें उन्हें पाने का मार्ग बता दो' ॥ 9 ॥

किं(न्) ते कृतं(ङ्) क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रि-
स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ।
अप्यङ्घ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद् वा,
आहो वराहवपुषः(फ्) परिरम्भणेन ॥ 10॥

स्पर्शोत्+ सवोत्+पुलकिताङ्+ गरुहैर्विभासि

भगवान्की प्रेयसी पृथ्वीदेवी! तुमने ऐसी कौन-सी तपस्या की है कि श्रीकृष्ण के चरण कमलो का स्पर्श प्राप्त कर के तुम आनन्द से भर रही हो और तृण-लता आदि के रूप में अपना रोमाञ्च प्रकट कर रही हो ? तुम्हारा यह उल्लास-विलास श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श के कारण है। अथवा वामनावतार में विश्वरूप धारण करके उन्होंने तुम्हें जो नापा था, उसके कारण है? कहीं उन से भी पहले वराह भगवान् के अङ्गसङ्ग के कारण तो तुम्हारी यह दशा नहीं हो रही हे ?' ॥ 10 ॥

अप्येणपत्न्युपगतः(फ्) प्रिययेह गात्रैस्-

तन्वन् दृशां(म्) सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।

कान्ताङ्गसङ्गकुचकुं(ङ्)कुमरं(ञ्)जितायाः(ख्),

कुन्दस्रजः(ख्) कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥ 11॥

अप्ये+ णपत्+ न्युपगतः(फ्),

कान्ताङ्ग+ सङ्ग+ कुचकुं(ङ्)+ कुमरं(ञ्)+ जितायाः(ख्)

'अरी सखी हरिनियो हमारे श्यामसुन्दर के अङ्गसङ्ग से सुषमा सौन्दर्य की धारा बहती रहती है, वे कहीं अपनी प्राणप्रियाके साथ तुम्हारे नयनो को परमानन्द का दान करते हुए इधर से ही तो नहीं गये है? देखो, देखो, यहाँ कुलपति श्रीकष्ण की कुन्दकलीकी मालाकी मनोहर गन्ध आ रही है, जो उनकी परम प्रेयसीके अङ्ग-सङ्गसे लगे कुङ्कूम से अनुरञ्जित रहती है' ॥ 11 ॥

बाहुं(म्) प्रियां(म्)स उपधाय गृहीतपद्मो,

रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।

अन्वीयमान इह वस्तरवः(फ्) प्रणामं(ङ्),

किं(वँ) वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥ 12॥

रामा+ नुजस् + तुलसिका+ लिकुलैर् + मदान्धैः

'तरुवरो! उनकी मालाकी तुलसीमें ऐसी सुगन्ध है कि उसकी गन्धके लोभी मतवाले भौरे प्रत्येक क्षण उसपर मँडराते रहते हैं। उनके एक हाथमें लीला कमल होगा और दूसरा हाथ अपनी प्रेयसी के कंधे पर रखे होंगे। हमारे प्यारे श्यामसुन्दर इधर से विचरते हुए अवश्य गये होंगे। जान पड़ता है, तुम लोग उन्हें प्रणाम करने के लिये ही झुके हो। परन्तु उन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवन से भी तुम्हारी वन्दना का अभिनन्दन किया है या नहीं ?' ॥ 12 ॥

पृच्छतेमा लता बाहू- नप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ।

नूनं(न्) तत्करजस्पृष्टा, बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ 13॥

तत् + करजस्+ पृष्टा, बिभ्रत्युत् + पुलकान्यहो

'अरी सखी ! इन लताओंसे पूछो। ये अपने पति वृक्षोंको भुजपाशमें बाँधकर आलिङ्गन किये हुए हैं, इससे क्या हुआ ? इनके शरीर में जो पुलक है, रोमाञ्च है, वह तो भगवान के नखों के स्पर्शसे ही है। अहो ! इनका कैसा सौभाग्य है ?' ॥ 13 ॥

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः(ख्), कृष्णान्वेषणकातराः ।

लीला भगवतस्तास्ता, ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ 14॥

इत्युन्मत्+ तवचो, ह्यनुचक्रुस् + तदात्मिकाः

परीक्षित ! इस प्रकार मतवाली गोपियाँ प्रलाप करती हुई भगवान श्रीकृष्ण को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कातर हो रही थीं। अब और भी गाढ़ आवेश हो जाने के कारण वे भगवन्मय होकर भगवान की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगी ॥ 14 ॥

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः(ख्), कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम् ।
तोकायित्वा रुदत्यन्या, पदाहञ्छकटायतीम् ॥ 15॥

कृष्णा+ यन्त्य+ पिबत्, पदाहञ् + छकटा+ यतीम्

एक पूतना बन गयी, तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगीं। कोई छकड़ा बन गयी, तो किसी ने बाल कृष्ण बनकर रोते हुए उसे पैर की ठोकर मारकर उलट दिया ॥ 15 ॥

दैत्यायित्वा जहारान्या- मेका कृष्णार्भभावनाम् ।
रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री, कर्षन्ती घोषनिः(स्)स्वनैः ॥ 16॥

कृष्णार् + भभावनाम्,

कोई सखी बाल कृष्ण बनकर बैठ गयी तो कोई तृणावर्त दैत्य का रूप धारण करके उसे हर ले गयी। कोई गोपी पाँव घसीट-घसीटकर घुटनोंके बल बकैयाँ चलने लगी और उस समय उसके पाजेब रुनझुन रुनझुन बोलने लगे ॥ 16 ॥

कृष्णरामायिते द्वे तु, गोपयन्त्यश्च काश्चन ।
वत्सायतीं(म्) हन्ति चान्या, तत्रैका तु बकायतीम् ॥ 17॥

गोपा+ यन्त्यश्च

एक बनी कृष्ण, तो दूसरी बनी बलराम, और बहुत-सी गोपियाँ ग्वालबालों के रूप में हो गयीं। एक गोपी बन गयी वत्सासुर, तो दूसरी बनी बकासुर। तब तो गोपियोंने अलग-अलग श्रीकृष्ण बनकर वत्सासुर और बकासुर बनी हुई गोपियों को मारने की लीला की ॥ 17 ॥

आहूय दूरगा यद्वत्- कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ।
वेणुं(ङ्) क्वणन्तीं(ङ्) क्रीडन्ती- मन्याः(श्) शं(म्)सन्ति साध्विति ॥ 18॥

कृष्णस् + तमनुकुर् + वतीम्

जैसे श्रीकृष्ण वन में करते थे, वैसे ही एक गोपी बाँसुरी बजा-बजा कर दूर गये हुए पशुओं को बुलाने का खेल खेलने लगी। तब दूसरी गोपियाँ 'वाह-वाह' कर के उसकी प्रशंसा करने लगीं ॥ 18 ॥

कस्यां(ञ्)चित् स्वभुजं(न्) न्यस्य, चलन्त्याहापरा ननु ।
कृष्णोऽहं(म्) पश्यत गतिं(लँ्), ललितामिति तन्मनाः ॥ 19॥

चलन्त्या+ हापरा

एक गोपी अपने को श्रीकृष्ण समझकर दूसरी सखी के गलेमें बाँह डालकर चलती और गोपियोंसे कहने लगती – 'मित्रो! मैं श्रीकृष्ण हूँ। तुम लोग मेरी यह मनोहर चाल देखो' ॥ 19 ॥

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां(न्), तत्त्राणं(वँ) विहितं(म्) मया ।

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन, यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ 20॥

तत् + त्राणं(वँ), इत्युक् + त्वैकेन, यतन् + त्युन् + निदधेऽम्बरम्

कोई गोपी श्रीकृष्ण बनकर कहती- 'अरे व्रज वासियो ! तुम आँधी-पानी से मत डरो। मैंने उससे बचने का उपाय निकाल लिया है।' ऐसा कहकर गोवर्धन-धारण का अनुकरण हुई वह अपनी ओढ़नी उठा कर ऊपर तान लेती ॥ 20 ॥

आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य, शिरस्याहापरां(न्) नृप ।

दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं(ङ्), खलानां(न्) ननु दण्डधृक् ॥ 21॥

परीक्षित! एक गोपी बनी कालिया नाग तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसके सिरपर पैर रखकर बड़ीबड़ी बोलने लगी — रे दुष्ट साँप ! तू यहाँ से चला जा। मैं दुष्टोंका दमन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ ॥ 21 ॥

तत्रैकोवाच हे गोपा, दावाग्निं(म्) पश्यतोल्बणम् ।

चक्षूं(म्)ष्याश्वपिदध्वं(वँ) वो, विधास्ये क्षेममं(ञ्)जसा ॥ 22॥

चक्षूं(म्)ष्याश्+ वपिदध्वं(वँ)

इतने में ही एक गोपी बोली- 'अरे ग्वालो! देखो, वन में बड़ी भयङ्कर आग लगी है। तुमलोग जल्दी से जल्दी अपनी आंखे मूंद लो, मैं अनायास ही तुम लोगों की रक्षा कर लूंगा' ॥ 22 ॥

बद्धान्यया स्रजा काचित्- तन्वी तत्र उलूखले ।

भीता सुदृक् पिधायास्यं(म्), भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ 23॥

एक गोपी यशोदा बनी और दूसरी बनी श्रीकृष्ण यशोदाने फूलोंकी मालासे श्रीकृष्णको ऊखल में बाँध दिया। अब वह श्रीकृष्ण बनी हुई सुन्दरी गोपी हाथों से मुँह ढँककर भय की नकल करने लगी॥ 23 ॥

एवं(ङ्) कृष्णं(म्) पृच्छमाना, वृन्दावनलतास्तरून् ।

व्यचक्षत वनोद्देशे, पदानि परमात्मनः ॥ 24॥

वृन्दावन+ लतास् + तरून्

परीक्षित्! इस प्रकार लीला करते-करते गोपियाँ वृन्दावन के वृक्ष और लता आदि से भी श्रीकृष्णका पता पूछने लगी। इसी समय उन्होंने एक स्थानपर भगवान् के चरणचिह्न देखे ॥ 24 ॥

पदानि व्यक्तमेतानि, नन्दसूनोर्महात्मनः ।

लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोज-वज्रां(ङ्)कुशयवादिभिः ॥ 25॥

नन्दसूनोर्+ महात्मनः, वज्रां(ङ्)+ कुशयवा+ दिभिः

वे आपसमें कहने लगी 'अवश्य ही ये चरणचिह्न उदारशिरोमणि नन्दनन्दन | श्यामसुन्दरके है; क्योंकि इनमें ध्वजा, कमल, य, अदा और जो आदिके चिह्न स्पष्ट ही दीख रहे हैं ॥ 25 ॥

तैस्तैः(फ्) पदैस्तत्पदवी- मन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः ।

वध्वाः(फ्) पदैः(स्) सुपृक्तानि, विलोक्यार्ताः(स्) समब्रुवन् ॥ 26॥

पदैस् + तत्पदवी, मन्विच् + छन्त्योऽ + ग्रतोऽ + बलाः

उन चरण चिह्नोंके द्वारा व्रज वल्लभ भगवान् को ढूँढ़ती हुई गोपियाँ आगे बढ़ीं, तब उन्हें श्रीकृष्ण के साथ किसी व्रज युवती के भी चरण चिह्न दीख पड़े। उन्हें देखकर वे व्याकुल हो गयीं। और आपस में कहने लगीं ॥ 26 ॥

कस्याः(फ्) पदानि चैतानि, यातायां नन्दसूनुना ।

अं(म्)सन्यस्तप्रकोष्ठायाः(ख्), करेणोः(ख्) करिणा यथा ॥ 27॥

अं(म्)सन्यस्+ तप्रकोष्ठायाः(ख्)

'जैसे हथिनी अपने प्रियतम गज राज के साथ गयी हो, वैसे ही नन्दनन्दन श्यामसुन्दर के साथ उनके कंधे पर हाथ रखकर चलने वाली किस बड़भागिनी के ये चरणचिह्न हैं ? ॥ 27 ॥

अनयाऽऽराधितो नूनं(म्), भगवान् हरिरीश्वरः ।

यन्नो विहाय गोविन्दः(फ्), प्रीतो यामनयद् रहः ॥ 28॥

अवश्य ही सर्व शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की यह 'आराधिका' होगी। | इसीलिये इसपर प्रसन्न होकर हमारे प्राणप्यारे श्यामसुन्दर ने हमें छोड़ दिया है और इसे एकान्तमें ले गये हैं॥ 28 ॥

धन्या अहो अमी आल्यो, गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ।

यान् ब्रह्मेशो रमा देवी, दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ 29॥

गोविन्दाङ् + घ्र्यब्जरेणवः, दधुर्मूर् + ध्न्यघनुत्तये

प्यारी सखियो ! भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणकमल से जिस रज का स्पर्श कर देते हैं, वह धन्य हो जाती है, उसके अहो भाग्य हैं। क्योंकि ब्रह्मा, शङ्कर और लक्ष्मी आदि भी अपने अशुभ नष्ट करनेके लिये उस रज को अपने सिरपर धारण करते हैं' ॥ 29 ॥

तस्या अमूनि नः क्षोभं(ङ्), कुर्वन्त्युच्चैः(फ्) पदानि यत् ।

यैकापहृत्य गोपीनां(म्), रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम् ॥ 30॥

कुर्वन्+ त्युच्चैः(फ्), भुङ्क्तेऽ + च्युताधरम्

'अरी सखी! चाहे कुछ भी हो-यह जो सखी हमारे सर्वस्व श्रीकृष्ण को एकान्त में ले जाकर अकेले ही उनकी अधर-सुधा का रस पी रही है, इस गोपी के उभरे हुए चरण चिह्न तो हमारे हृदय में बड़ा ही क्षोभ उत्पन्न कर रहे है' ॥ 30 ॥

न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र, तस्या नूनं(न्) तृणां(ङ्)कुरैः ।

खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितला- मुन्न्ये प्रेयसीं(म्) प्रियः ॥ 31॥

खिद्यत् +सुजाताङ् + घ्रितला

यहाँ उस गोपी के पैर नहीं दिखायी देते। मालूम होता है, यहाँ प्यारे श्यामसुन्दर ने देखा होगा कि मेरी प्रेयसी के सुकुमार चरण कमलों में घास की नोक गड़ती होगी इसलिये उन्होंने उसे अपने कंधे पर चढ़ा लिया होगा ॥ 31 ॥

इमान्यधिकमग्नानि, पदानि वहतो वधूम् ।

गोप्यः(फ्) पश्यत कृष्णस्य, भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥ 32॥

इमान् + यधिकमग्+ नानि

सखियो। यहाँ देखो, प्यारे श्रीकृष्ण के चरण चिह्न अधिक गहरे बालू में धंसे हुए हैं। इस से सूचित होता है कि वहाँ वे किसी भारी वस्तुको उठाकर चले हैं, उसीके बोझसे उनके पैर जमीन में धंस गये हैं। हो न हो यहाँ उस कामी ने अपनी प्रियतमा को अवश्य कंधे पर चढ़ाया होगा ॥ 32 ॥

अत्रावरोपिता कान्ता, पुष्पहेतोर्महात्मना ।

अत्र प्रसूनावचयः(फ्), प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ।

प्रपदाक्रमणे एते, पश्यतासकले पदे ॥ 33॥

अत्रा+ वरोपिता ,पुष्पहेतोर्+ महात्मना

देखो-देखो यहाँ परम प्रेमी व्रज वल्लभ ने फूल चुनने के लिये अपनी प्रेयसी को नीचे उतार दिया है और यहाँ परम प्रियतम श्रीकृष्ण ने अपनी प्रेयसी के लिये फूल चुने हैं। उचक-उचक कर फूल तोड़नेके कारण यहाँ उनके पंजे तो धरती में गड़े हुए हैं और एड़ीका पता ही नहीं है ॥ 33 ॥

केशप्रसाधनं(न्) त्वत्र, कामिन्याः(ख्) कामिना कृतम् ।

तानि चूडयता कान्ता- मुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ 34॥

परम प्रेमी श्रीकृष्ण ने कामी पुरुष के समान यहाँ अपनी प्रेयसी के केश सँवारे हैं। देखो, अपने चुने हुए फूलों को प्रेयसी की चोटी में गूंथने के लिये वे यहाँ अवश्य ही बैठे रहे होंगे ॥ 34 ॥

रेमे तया चात्मरत, आत्मारामोऽप्यखण्डितः ।

कामिनां(न्) दर्शयन् दैन्यं(म्), स्त्रीणां(ञ्) चैव दुरात्मताम् ॥ 35॥

आत्मारामोऽ+प्यखण्डितः

परीक्षित । भगवान श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। वे अपने-आपमें ही सन्तुष्ट और पूर्ण हैं। जब वे अखण्ड हैं, उनमें दूसरा कोई है ही नहीं, तब उनमें काम की कल्पना कैसे हो सकती है? फिर भी उन्होंने कामियों की दीनता-स्त्रीपरवशता और स्त्रियों की कुटिलता दिखलाते हुए वहाँ उस गोपी के साथ एकान्त में क्रीडा की थी— एक खेल रचा था ॥ 35 ॥

इत्येवं(न्) दर्शयन्त्यस्ताश्- चेरुर्गोप्यो विचेतसः ।

यां(ङ्) गोपीमनयत् कृष्णो, विहायान्याः(स्) स्त्रियो वने ॥ 36॥

दर्शयन् + त्यस्ताश्

सा च मेने तदाऽऽत्मानं(वँ), वरिष्ठं(म्) सर्वयोषिताम् ।

हित्वा गोपीः(ख्) कामयाना, मामसौ भजते प्रियः ॥ 37॥

इस प्रकार गोपियाँ मतवाली-सी होकर अपनी सुधबुध खोकर एक दूसरेको भगवान श्रीकृष्णके चरण चिह्न दिखलाती हुई वन-वनमें भटक रही थीं। इधर भगवान श्रीकृष्ण दूसरी गोपियों को वनमें छोड़कर जिस भाग्यवती गोपी को एकान्त में ले गये थे, उसने समझा कि मैं ही समस्त गोपियों में श्रेष्ठ है। इसीलिये तो हमारे प्यारे श्रीकृष्ण दूसरी गोपियोंको छोड़कर, जो उन्हें इतना चाहती है, केवल मेरा ही मान करते हैं। मुझे ही आदर दे रहे हैं ॥ 36-37 ॥

ततो गत्वा वनोद्देशं(न्), दृप्ता केशवमब्रवीत् ।

न पारयेऽहं(ञ्) चलितुं(न्), नय मां(यँ) यत्र ते मनः ॥ 38॥

भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मा और शङ्करके भी शासक हैं। वह गोपी वन में जाकर अपने प्रेम और सौभाग्य के मद से मतवाली हो गयी और उन्हीं श्रीकृष्णसे कहने लगीं— 'प्यारे ! मुझसे अब तो और नहीं चला जाता। मेरे सुकुमार पाँव थक गये हैं। अब तुम जहाँ चलना चाहो, मुझे अपने कंधेपर चढ़ाकर ले चलो' ॥ 38 ॥

एवमुक्तः(फ्) प्रियामाह, स्कन्ध आरुह्यतामिति ।

ततश्चान्तर्दधे कृष्णः(स्), सा वधूरन्वतप्यत ॥ 39॥

आरुह्यता+ मिति, ततश् + चान्तर्+ दधे, वधू+ रन्व+ तप्यत

अपनी प्रियतमा की यह बात सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा- 'अच्छा प्यारी ! तुम अब मेरे कंधेपर चढ़ लो।' यह सुनकर वह गोपी ज्यों ही उनके कंधेपर चढ़ने चली, तो श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये और वह 'सौभाग्यवती गोपी रोने-पछताने लगी ॥ 39 ॥

हा नाथ रमण प्रेष्ठ, क्वासि क्वासि महाभुज ।

दास्यास्ते कृपणाया मे, सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ 40॥

हे नाथ! हे रमण ! हे प्रेष्ठ हे महाभुज ! तुम कहाँ हो ! कहाँ हो !! मेरे सखा मैं तुम्हारी दीन-हीन दासी हूँ। शीघ्र ही मुझे अपने सान्निध्यका अनुभव कराओ, मुझे दर्शन दो' ॥ 40 ॥

अन्विच्छन्त्यो भगवतो, मार्गं(ङ्) गोप्योऽविदूरतः ।

ददृशुः(फ्) प्रियविश्लेष- मोहितां(न्) दुःखितां(म्) सखीम् ॥ 41॥

अन्विच् + छन्त्यो

परीक्षित् गोपियाँ भगवान्के चरण चिह्नों के सहारे उनके जाने का मार्ग ढूँढ़ती ढूँढ़ती वहाँ जा पहुँची। थोड़ी दूरसे ही उन्होंने देखा कि उनकी सखी अपने प्रियतम के वियोग से दुखी होकर अचेत हो गयी है ॥ 41 ॥

तया कथितमाकर्ण्य, मानप्राप्तिं(ञ्) च माधवात् ।

अवमानं(ञ्) च दौरात्म्याद्, विस्मयं(म्) परमं(यँ) ययुः ॥ 42॥

कथितमा+ कर्ण्य, दौरात् + म्याद्

जब उन्होंने उसे जगाया, तब उसने भगवान श्रीकृष्ण से उसे जो प्यार और सम्मान प्राप्त हुआ था, वह उनको सुनाया। उसने यह भी कहा कि 'मैंने कुटिलता वश उनका अपमान किया, इसीसे वे अन्तर्धान हो गये।' उसकी बात सुनकर गोपियों के आश्चर्यकी सीमा न रही ॥ 42 ॥

ततोऽविशन् वनं(ञ्) चन्द्र- ज्योत्स्ना यावद् विभाव्यते ।

तमः(फ्) प्रविष्टमालक्ष्य, ततो निववृतुः(स्) स्त्रियः ॥ 43॥

इस के बाद वन में जहाँ तक चन्द्र देव की चाँदनी छिटक रही थी, वहाँ तक वे उन्हें ढूँढ़ती हुई गयीं। परन्तु जब उन्हों ने देखा कि आगे घना अन्धकार है—घोर जंगल है— हम ढूँढ़ती जायँगी तो श्रीकृष्ण और भी उसके अंदर घुस जायँगे, तब वे उधर से लौट आयीं ॥ 43 ॥

तन्मनस्कास्तदालापास्-तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।

तद्गुणानेव गायन्त्यो, नात्मागाराणि सस्मरुः ॥ 44॥

तन्मनस्कास्+ तदालापास्, तद्विचेष्टास्+ तदात्मिकाः, नात्मा+ गाराणि

परीक्षित ! गोपियों का मन श्रीकृष्णमय हो गया था। उनकी वाणी से कृष्ण चर्चाके अतिरिक्त और कोई बात नहीं निकलती थी। उनके शरीर से केवल श्रीकृष्ण के लिये और केवल श्रीकृष्ण की चेष्टाएँ हो रही थीं। कहाँ तक कहूँ; उन का रोम-रोम, उन की आत्मा श्रीकृष्णमय हो रही थी। वे केवल उनके गुणों और लीलाओंका ही गान कर रही थीं और उनमें इतनी तन्मय हो रही थीं कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध नहीं थी, फिर घर की याद कौन करता ? ॥ 44 ॥

पुनः(फ्) पुलिनमागत्य, कालिन्द्याः(ख्) कृष्णभावनाः ।

समवेता जगुः(ख्) कृष्णं(न्), तदागमनकां(ङ्)क्षिताः ॥ 45॥

गोपियों का रोम-रोम इस बात की प्रतीक्षा और आकाङ्क्षा कर रहा था कि जल्दी-से जल्दी श्रीकृष्ण आयें। श्रीकृष्ण की ही भावना मे डूबी हुई गोपियाँ यमुनाजी के पावन पुलिनपर - रमण रेती में लौट आयीं और एक साथ मिलकर श्रीकृष्ण के गुणों का गान करने लगीं ॥ 45 ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां(ङ्) कृष्णान्वेषणं(न्) नामत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

रास पंचाध्याय(10.31)गोपी गीत

प्रेम का रस बिछोह की पाती
गोपी गीत अमृत की भांति

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः
जयति तेऽधिकं(ञ्) जन्मना व्रजः(श्),
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां(न्) दिक्षु तावकास्-
त्वयि धृतासवस्त्वां(वँ) विचिन्वते ॥ 1॥

धृता+ सवस्+ त्वां(वँ)

गोपियाँ विरहावेश में गाने लगीं- 'प्यारे! तुम्हारे जन्म के कारण वैकुण्ठ आदि लोकों से भी व्रज की महिमा बढ़ गयी है। तभी तो सौन्दर्य और मृदुलता की देवी लक्ष्मीजी अपना निवासस्थान वैकुण्ठ छोड़कर यहाँ नित्य-निरन्तर निवास करने लगी हैं, इसकी सेवा करने लगी हैं। परन्तु प्रियतम ! देखो तुम्हारी गोपियाँ जिन्होंने तुम्हारे चरणों में ही अपने प्राण समर्पित कर रखे हैं, वन-वन में भटककर तुम्हें ढूँढ़ रही हैं ॥ 1॥

शरदुदाशये साधुजातसत्,

सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।

सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका,

वरद निघ्नतो नेह किं(वँ) वधः ॥ 2॥

सरसि+ जोदर+ श्रीमुषा

हमारे प्रेमपूर्ण हृदय के स्वामी! हम तुम्हारी बिना मोल की दासी हैं। तुम शरत् कालीन जलाशय में सुन्दर-से-सुन्दर सरसिज की कर्णिका के सौन्दर्य को चुरानेवाले नेत्रों से हमें घायल कर चुके हो। हमारे मनोरथ पूर्ण करनेवाले प्राणेश्वर! क्या नेत्रों से मारना वध नहीं है? अस्त्रों से हत्या करना ही वध है? ॥ 2॥

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्,

वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।

वृषमयात्मजाद् विश्वतोभया-

दृषभ ते वयं(म्) रक्षिता मुहुः ॥ 3॥

विष+ जलाप्ययाद् , व्याल+ राक्षसाद् , वर्ष+ मारुताद् , वैद्युता+ नलात् ,वृष+ मयात्मजाद्

पुरुषशिरोमणे! यमुनाजी के विषैले जल से होनेवाली मृत्यु, अजगर के रूप में खानेवाले अघासुर, इन्द्र की वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल, वृषभासुर और व्योमासुर आदि से एवं भिन्न-भिन्न अवसरों पर सब प्रकार के भयोंसे तुमने बार-बार हमलोगों की रक्षा की है ॥ 3॥

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-

नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।

विखनसार्थितो विश्वगुप्तये,

सख उदेयिवान् सात्वतां(ङ्) कुले ॥ 4॥

नखिल+ देहिना+ मन्त+ रात्मदृक्, विखन+ सार्थितो

तुम केवल यशोदानन्दन ही नहीं हो; समस्त शरीरधारियों के हृदय में रहनेवाले उनके साक्षी हो, अन्तर्यामी हो। सखे! ब्रह्माजी की प्रार्थना से विश्व की रक्षा करने के लिये तुम यदुवंश में अवतीर्ण हुए हो ॥ 4॥

विरचिताभयं(वँ) वृष्णिधुर्य ते,

चरणमीयुषां(म्) सं(म्)सृतेर्भयात् ।

करसरोरुहं(ङ्) कान्त कामदं(म्),

शिरसि धेहि नः(श्) श्रीकरग्रहम् ॥ 5॥

विरचिता + भयं, सं(म्)सृतेर् + भयात्

अपने प्रेमियों की अभिलाषा पूर्ण करनेवालों में अग्रगण्य यदुवंशशिरोमणे! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसार के चक्कर से डरकर तुम्हारे चरणों की शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छत्र- छाया में लेकर अभय कर देते हैं। हमारे प्रियतम! सबकी लालसा- अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाला वही करकमल, जिससे तुमने लक्ष्मीजी का हाथ पकड़ा है, हमारे सिरपर रख दो ॥ 5॥

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां(न्),
निजजनस्मयध्वं(म्)सनस्मित ।
भज सखे भवत्किं(ङ्)करीः(स्) स्म नो,
जलरुहाननं(ञ्) चारु दर्शय ॥ 6॥

व्रज+ जनार् + तिहन् , निज+ जनस्मय+ ध्वं(म्)सनस्मित

व्रजवासियों के दुःख दूर करनेवाले वीरशिरोमणि श्यामसुन्दर ! तुम्हारी मन्द-मन्द मुसकान की एक उज्ज्वल रेखा ही तुम्हारे प्रेमीजनों के सारे मान-मद को चूर-चूर कर देनेके लिये पर्याप्त है। हमारे प्यारे सखा! हमसे रूठो मत, प्रेम करो। हम तो तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारे चरणों पर निछावर हैं। हम अबलाओं को अपना वह परम सुन्दर साँवला-साँवला मुखकमल दिखलाओ ॥ 6॥

प्रणतदेहिनां(म्) पापकर्शनं(न्),
तृणचरानुगं(म्) श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं(न्) ते पदाम्बुजं(ङ्),
कृणु कुचेषु नः(ख्) कृन्धि हृच्छयम् ॥ 7॥

प्रणत+ देहिनां(म्) , तृण+ चरानुगं(म्) , फणि+ फणार्पितं(न्)

तुम्हारे चरणकमल शरणागत प्राणियों के सारे पापों को नष्ट कर देते हैं। वे समस्त सौन्दर्य, माधुर्य की खान हैं और स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती रहती हैं। तुम उन्हीं चरणों से हमारे बछड़ों के पीछे-पीछे चलते हो और हमारे लिये उन्हें साँप के फणतक पर रखने में भी तुमने संकोच नहीं किया। हमारा हृदय तुम्हारी विरह व्यथा की आगसे जल रहा है तुम्हारी मिलन की आकांक्षा हमें सता रही है। तुम अपने वे ही चरण हमारे वक्षःस्थल पर रखकर हमारे हृदय की ज्वाला को शान्त कर दो ॥ 7॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया,
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती-
रधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥ 8॥

वल्गु+ वाक्यया , बुध+ मनोज्ञया , विधि+ करी+ रिमा , रधर+सीधुनाऽऽ+ प्याययस्व

कमलनयन! तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है! उसका एक-एक पद, एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर मधुरातिमधुर है। बड़े-बड़े विद्वान् उसमें रम जाते हैं। उसपर अपना सर्वस्व निछावर कर देते हैं। तुम्हारी उसी वाणी का रसास्वादन करके तुम्हारी आज्ञाकारिणी दासी गोपियाँ मोहित हो रही हैं। दानवीर! अब तुम अपना दिव्य अमृत से भी मधुर अधर-रस पिलाकर हमें जीवन-दान दो, छका दो ॥ 8॥

तव कथामृतं(न्) तप्तजीवनं(ङ्),

कविभिरीडितं(ङ्) कल्मषापहम् ।

श्रवणमङ्गलं(म्) श्रीमदाततं(म्),

भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ 9॥

तप्त+ जीवनं(ङ्), कवि+ भिरीडितं(ङ्)

प्रभो! तुम्हारी लीलाकथा भी अमृतस्वरूप है। विरह से सताये हुए लोगों के लिये तो वह जीवन सर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं—भक्त कवियों ने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवण मात्र से परम मंगल - परम कल्याण का दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला - कथा का गान करते हैं, वास्तव में भूलोक में वे ही सबसे बड़े दाता हैं ॥ 9॥

प्रहसितं(म्) प्रियं प्रेमवीक्षणं(वँ),

विहरणं(ञ्) च ते ध्यानमङ्गलम् ।

रहसि संविदो या हृदिस्पृशः(ख्),

कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ 10॥

प्रेम+ वीक्षणं(वँ)

प्यारे! एक दिन वह था, जब तुम्हारी प्रेमभरी हँसी और चितवन तथा तुम्हारी तरह-तरह की क्रीडाओं का ध्यान करके हम आनन्द में मग्न हो जाया करती थीं। उनका ध्यान भी परम मंगलदायक है, उसके बाद तुम मिले। तुमने एकान्त में हृदयस्पर्शी ठिठोलियाँ कीं, प्रेम की बातें कहीं। हमारे कपटी मित्र ! अब वे सब बातें याद आकर हमारे मन को क्षुब्ध किये देती हैं ॥ 10॥

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्,

नलिनसुन्दरं(न्) नाथ ते पदम् ।

शिलतृणां(ङ्)कुरैः(स्) सीदतीति नः(ख्),

कलिलतां(म्) मनः(ख्) कान्त गच्छति ॥ 11॥

व्रजाच् + चारयन् , शिल+ तृणां(ङ्)+ कुरैः(स्)

हमारे प्यारे स्वामी! तुम्हारे चरण कमल से भी सुकोमल और सुन्दर हैं। जब तुम गौओं को चराने के लिये व्रज से निकलते हो तब यह सोचकर कि तुम्हारे वे युगल चरण कंकड़, तिनके और कुश-काँटे गड़ जाने से कष्ट पाते होंगे, हमारा मन बेचैन हो जाता है। हमें बड़ा दुःख होता है ॥ 11॥

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्-

वनरुहाननं(म्) बिभ्रदावृतम् ।

घनरजस्वलं(न्) दर्शयन् मुहुर्-

मनसि नः(स्) स्मरं(वँ) वीर यच्छसि ॥ 12॥

दिन+ परिक्षये , घन+रजस्+ वलं(न्)

दिन ढलने पर जब तुम वन से घर लौटते हो, तो हम देखती हैं कि तुम्हारे मुखकमल पर नीली-नीली अलकें लटक रही हैं और गौओं के खुर से उड़-उड़कर घनी धूल पड़ी हुई है। हमारे वीर प्रियतम! तुम अपना वह सौन्दर्य हमें दिखा दिखाकर हमारे हृदय में मिलन की आकांक्षा—प्रेम उत्पन्न करते हो ॥ 12॥

प्रणतकामदं(म्) पद्मजार्चितं(न्),
धरणिमण्डनं(न्) ध्येयमापदि ।
चरणपं(ङ्)कजं(म्) शन्तमं(ञ्) च ते,
रमण नः(स्) स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ 13॥

पद्म+ जार्चितं(न्) , स्तनेष्+ वर्प+ याधिहन्

प्रियतम! एकमात्र तुम्हीं हमारे सारे दुःखों को मिटानेवाले हो। तुम्हारे चरणकमल शरणागत भक्तों की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती हैं और पृथ्वी के तो वे भूषण ही हैं। आपत्ति के समय एकमात्र उन्हीं का चिन्तन करना उचित है, जिससे सारी आपत्तियाँ कट जाती हैं। कुंजविहारी! तुम अपने वे परम कल्याणस्वरूप चरणकमल हमारे वक्षःस्थल पर रखकर हृदय की व्यथा शान्त कर दो ॥ 13॥

सुरतवर्धनं(म्) शोकनाशनं(म्),
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं(न्) नृणां(वँ),
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ 14॥

सुरत+ वर्धनं(म्), स्वरित+ वेणुना, इतर+ रागविस् + मारणं(न्) नस् + तेऽधरा+ मृतम्

वीरशिरोमणे! तुम्हारा अधरामृत मिलन के आकांक्षा को बढ़ानेवाला है। वह विरहजन्य समस्त शोक-सन्ताप को नष्ट कर देता है। सुख को— यह गानेवाली बाँसुरी भलीभाँति उसे चूमती रहती है। जिन्होंने एक बार उसे पी लिया, उन लोगों को फिर दूसरों और दूसरों की आसक्तियों का स्मरण भी नहीं होता। हमारे वीर! अपना वही अधरामृत हमें वितरण करो, पिलाओ ॥ 14॥

अटति यद् भवानह्नि काननं(न्),
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं(म्) श्रीमुखं(ञ्) च ते,
जड उदीक्षतां(म्) पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥ 15॥

त्रुटिर् + युगायते , त्वाम+ पश्यताम्

प्यारे ! दिन के समय जब तुम वन में विहार करने के लिये चले जाते हो, तब तुम्हें देखे बिना हमारे लिये एक- एक क्षण युग के समान हो जाता है और जब तुम सन्ध्या के समय लौटते हो तथा घुँघराली अलकों से युक्त तुम्हारा परम सुन्दर मुखारविन्द हम देखती हैं, उस समय पलकों का गिरना हमारे लिये भार हो जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि इन नेत्रों की पलकों को बनानेवाला विधाता मूर्ख है ॥ 15॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा-

नतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।

गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः(ख्),

कितव योषितः(ख्) कस्त्यजेन्निशि ॥ 16॥

पतिसुतान्वय+ भ्रातृबान्धवा, तेऽन् + त्यच् + युतागताः

गति+ विदस्तवोद्+ गीतमोहिताः(ख्) , कस्त्य+ जेन्+ निशि

प्यारे श्यामसुन्दर! हम अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु और कुल-परिवार का त्यागकर, उनकी इच्छा और आज्ञाओं का उल्लंघन करके तुम्हारे पास आयी हैं। हम तुम्हारी एक-एक चाल जानती हैं, संकेत समझती हैं और तुम्हारे मधुर गान की गति समझकर, उसीसे मोहित होकर यहाँ आयी हैं। कपटी! इस प्रकार रात्रि के समय आयी हुई युवतियों को तुम्हारे सिवा और कौन छोड़ सकता है ॥ 16॥

रहसि सं(वँ)विदं(म्) हृच्छयोदयं(म्),

प्रहसिताननं(म्) प्रेमवीक्षणम् ।

बृहदुरः(श्) श्रियो वीक्ष्य धाम ते,

मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ 17॥

हृच्छ+ योदयं(म्), मुहुरति+ स्पृहा

प्यारे ! एकान्त में तुम मिलन की आकांक्षा, प्रेम-भाव को जगानेवाली बातें करते थे। ठिठोली करके हमें छेड़ते थे। तुम प्रेमभरी चितवन से हमारी ओर देखकर मुसकरा देते थे और हम देखती थीं तुम्हारा वह विशाल वक्षःस्थल, जिसपर लक्ष्मीजी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। तबसे अबतक निरन्तर हमारी लालसा बढ़ती ही जा रही है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है ॥ 17॥

व्रजवनौकसां(वँ) व्यक्तिरङ्ग ते,

वृजिनहन्त्र्यलं(वँ) विश्वमङ्गलम् ।

त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां(म्),

स्वजनहृद्रुजां(यँ) यन्निषूदनम् ॥ 18॥

व्रज+ वनौ+ कसां(वँ), वृजि+ नहन् + त्र्यलं(वँ)

नस् + त्वत् + स्पृहात् + मनां(म्) , यन् + निषूदनम्

प्यारे! तुम्हारी यह अभिव्यक्ति व्रज-वनवासियों के सम्पूर्ण दुःख-ताप को नष्ट करनेवाली और विश्व का पूर्ण मंगल करने के लिये है। हमारा हृदय तुम्हारे प्रति लालसा से भर रहा है। कुछ थोड़ी-सी ऐसी ओषधि दो, जो तुम्हारे निजजनों के हृदयरोग को सर्वथा निर्मूल कर दे ॥ 18॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं(म्) स्तनेषु,

भीताः(श्) शनैः(फ्) प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।

तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्,

कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां(न्) नः ॥ 19॥

सुजात+ चरणाम् + बुरुहं(म्), तेना+ टवी+ मटसि

कूर्पादि+ भिर् + भ्रमति, धीर् + भवदा+ युषां(न्)

तुम्हारे चरण कमल से भी सुकुमार हैं। उन्हें हम अपने कठोर स्तनोंपर भी डरते-डरते बहुत धीरेसे रखती हैं कि कहीं उन्हें चोट न लग जाय। उन्हीं चरणों से तुम रात्रि के समय घोर जंगल में छिपे-छिपे भटक रहे हो! क्या कंकड़, पत्थर आदि की चोट लगने से उनमें पीड़ा नहीं होती? हमें तो इसकी सम्भावना मात्र से ही चक्कर आ रहा है। हम अचेत होती जा रही हैं। श्रीकृष्ण! श्यामसुन्दर! प्राणनाथ! हमारा जीवन तुम्हारे लिये है, हम तुम्हारे लिये जी रही हैं, हम तुम्हारी हैं ॥ 19॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां(ङ्) गोपीगीतं(न्) नामैकत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

रास पंचाध्याय(10.32)

भक्तों मे ज्यों गोपी श्रेष्ठ, मुनियों में ज्यों व्यास।
पुराणों में ज्यों भागवतम्, लीला में महारास।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्॥

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंध:

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इति गोप्यः(फ्) प्रगायन्त्यः(फ्), प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।
रुरुदुः(स्) सुस्वरं(म्) राजन्, कृष्णदर्शनलालसाः ॥ 1॥

प्रगा+ यन्त्यः(फ्), प्रलपन्+ त्यश्च

श्रीशुकदेवजी कहते हैं - परीक्षित्! भगवान् की प्यारी गोपियाँ विरह के आवेश में इस प्रकार भाँति-भाँति से गाने और प्रलाप करने लगीं। अपने कृष्ण-प्यारे के दर्शन की लालसा से वे अपने को रोक न सकीं, करुणा जनक सुमधुरस्वर से फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ 1 ॥

तासामाविरभूच्छौरिः(स्), स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः(स्) स्रग्वी, साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ 2॥

तासामा+ विरभूच् + छौरिः(स्), स्मयमा+ नमुखाम्बुजः, साक्षान्+ मन्मथ+ मन्मथः

ठीक उसी समय उनके बीचो-बीच भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुख कमल मन्द मन्द मुसकान से खिला हुआ था। गले में वनमाला थी, पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका यह रूप क्या था, सबके मनको मथ डालने वाले कामदेव के मन को भी मथने वाला था ॥ 2 ॥

तं(वँ) विलोक्यागतं(म्) प्रेष्ठं(म्), प्रीत्युँत्फुल्लदृशोऽबलाः ।

उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्- तन्वः(फ्) प्राणमिवागतम् ॥ 3॥

प्रीत्युत् + फुल्लदृशोऽ+ बलाः, उत्तस् + थुर्युगपत्

कोटि-कोटि कामों से भी सुन्दर परम मनोहर प्राणवल्लभ श्यामसुन्दर को आया देख गोपियों के नेत्र प्रेम और आनन्द से खिल उठे। वे सब की सब एक ही साथ इस प्रकार उठ खड़ी हुई, मानो प्राणहीन शरीर में दिव्य प्राणों का सञ्चार हो गया हो, शरीर के एक-एक अङ्ग में नवीन चेतना-नूतन स्फूर्ति आ गयी हो ॥ 3 ॥

काचित् कराम्बुजं(म्) शौरेर्- जगृहेऽञ्जलिना मुदा ।

काचिद् दधार तद्बाहु- मं(म्)से चन्दनरूषितम् ॥ 4॥

चन्द+ नरूषितम्

एक गोपी ने बड़े प्रेम और आनन्द से श्रीकृष्ण के करकमल को अपने दोनों हाथों में ले लिया और वह धीरे-धीर उसे सहलाने लगी। दूसरी गोपी ने उनके चन्दनचर्चित भुजदण्ड को अपने कंधे पर रख लिया॥ 4 ॥

काचिदञ्जलिनागृह्णात्- तन्वी ताम्बूलचर्वितम् ।

एका तदङ्घ्रिकमलं(म्), सन्तप्ता स्तनयोरधात् ॥ 5॥

काचिदञ्+ जलिना+ गृह्णात् , ताम्बू+ लचर्वितम्

तीसरी सुन्दरी ने भगवान् का चबाया हुआ पान अपने हाथों में ले लिया। चौथी गोपी, जिस के हृदय में भगवान् के विरह से बड़ी जलन हो रही थी, बैठ गयी और उनके चरण कमलों को अपने वक्षःस्थल पर रख लिया ॥ 5 ॥

एका भ्रुकुटिमाबध्य, प्रेमसं(म्)रम्भविह्वला ।

घ्नतीवैक्षत् कटाक्षेपैः(स्), सं(न्)दष्टदशनच्छदा ॥ 6॥

प्रेमसं(म्)रम् + भविह्वला , घ्नती+ वैक्षत् , सं(न्)दष्ट+ दशनच् + छदा

पाँचवीं गोपी प्रणय कोप से विह्वल होकर, भहिं चढ़ाकर, दाँतों से होठ दबाकर अपने कटाक्ष-बाणों से बींधती हुई उनकी ओर ताकने लगी ॥ 6 ॥

अपरानिमिषद्दृग्भ्यां(ञ्), जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् ।

आपीतमपि नातृप्यत्, सन्तस्तच्चरणं(यँ) यथा ॥ 7॥

अपरा+ निमिषद्+ दृग्भ्यां(ञ्), तन्मुखाम् + बुजम् ,सन्तस्+ तच्+ चरणं(यँ)

छठी गोपी अपने निर्निमेष नयनों से उनके मुख कमल का मकरन्द-रस पान करने लगी। | परन्तु जैसे संत पुरुष भगवान् के चरणों के दर्शन से कभी तृप्त नहीं होते, वैसे ही वह उनकी मुख-माधुरी का निरन्तर पान करते रहने पर भी तृप्त नहीं होती थी ॥ 7 ॥

तं(ङ्) काचिन्नेत्ररन्ध्रेण, हृदिकृत्य निमील्य च ।

पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते, योगीवानन्दसम्प्लुता ॥ 8॥

काचिन्+ नेत्ररन्+ ध्रेण, पुलकाङ्+ ग्युप+ गुह्यास्ते, योगीवा+ नन्दसम्प्लुता

सातवीं गोपी नेत्रों के मार्ग से भगवान् को अपने हृदय में ले गयी और फिर उसने आँखें बंद कर लीं। अब मन-ही-मन भगवान् का आलिङ्गन करने से उसका शरीर पुलकित हो गया, रोम-रोम खिल उठा और वह सिद्ध योगियों के समान परमानन्द में मन हो गयी ॥ 8 ॥

सर्वास्ताः(ख्) केशवालोक- परमोत्सवनिर्वृताः ।

जहुर्विरहजं(न्) तापं(म्), प्राज्ञं(म्) प्राप्य यथा जनाः ॥ 9॥

परमोत्+ सवनिर्वृताः

परीक्षित्! जैसे मुमुक्षुजन परम ज्ञानी संत पुरुष को प्राप्त करके संसार की पीड़ा से मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही सभी गोपियों को भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से परम आनन्द और परम उल्लास प्राप्त हुआ। उनके विरह के कारण गोपियों को जो दुःख हुआ था, उससे वे मुक्त हो गयीं और शान्ति के समुद्र में डूबने-उतराने लगीं ॥ 9 ॥

ताभिर्विधूतशोकाभिर्- भगवानच्युतो वृतः ।

व्यरोचताधिकं(न्) तात, पुरुषः(श्) शक्तिभिर्यथा ॥ 10॥

ताभिर्विधू+ तशोकाभिर्, भगवा+ नच्युतो

परीक्षित्! यों तो भगवान् श्रीकृष्ण अच्युत और एकरस है, उनका सौन्दर्य और माधुर्य निरतिशय है; फिर भी विरह व्यथा से मुक्त हुई गोपियों के बीच में उनकी शोभा और भी बढ़ गयी। ठीक वैसे ही, जैसे परमेश्वर अपने नित्य ज्ञान, बल आदि शक्तियों से सेवित होने पर और भी शोभायमान होता है ॥ 10 ॥

ताः(स्) समादाय कालिन्द्या, निर्विश्य पुलिनं(वँ) विभुः ।

विकसत्कुन्दमन्दार- सुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ 11॥

विकसत् + कुन्दमन्दार, सुरभ्य+ निलषट्पदम्

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने उन व्रजसुन्दरियों को साथ लेकर यमुनाजी के पुलिन में प्रवेश किया। उस समय खिले हुए कुन्द और मन्दार के पुष्पों की सुरभि लेकर बड़ी ही शीतल और सुगन्धित मन्द मन्द बाबु चल रही थी और उसकी महक में मत वाले होकर भौरे इधर-उधर मँडरा रहे थे ॥ 11 ॥

शरच्चन्द्रां(म्)शुसन्दोह- ध्वस्तदोषातमः(श्) शिवम् ।

कृष्णाया हस्ततरला- चितकोमलवालुकम् ॥ 12॥

शरच् + चन्द्रां(म्)शु+ सन्दोह, ध्वस्त+ दोषातमः(श्)

शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की चांदनी अपनी निराली ही दि रही थी। उसके कारण रात्रि के अन्धकार का तो कहीं पता होन था, सर्वत्र आनन्द-मङ्ग॰ल का ही साम्राज्य छाया था। वह पुलिस क्या था, यमुनाजी ने स्वयं अपनी लहरों के हाथों भगवान् को लीला के लिये सुकोमल बालुका का रंगमञ्च बना रखा था ॥ 12 ॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो,

मनोरथान्तं(म्) श्रुतयो यथा ययुः ।

स्वैरुत्तरीयैः(ख्) कुचकुं(ङ्)कुमां(ङ्)कितै-

रचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ 13॥

तद्दर्शनाह् + लादविधू+ तहृद्रुजो, रचीक्लृपन्ना+ सनमात् + मबन्धवे

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से गोपियों के हृदय में इतने आनन्द और इतने रसका उल्लास हुआ कि उनके हृदय की सारी अधि-व्याधि मिट गयी। जैसे कर्मकाण्ड की श्रुतियाँ उसका वर्णन करते-करते अन्त में ज्ञानकाण्ड का प्रतिपादन करने लगती है और फिर वे समस्त मनोरथों से ऊपर उठ जाती हैं, कृतकृत्य हो जाती हैं - वैसे ही गोपियाँ भी पूर्णकाम हो गयीं। अब उन्होंने अपने वक्षःस्थल पर लगी हुई रोली-केसर से चिह्नित ओढ़नी को अपने परम प्यारे सुहद् श्रीकृष्ण के विराज ने के लिये बिछा दिया ॥ 13॥

तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो

योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः ।

चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितस् -

त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं(वँ) वपुर्दधत् ॥ 14॥

योगेश्वरान्+ तर्हृदि, गोपीपरिषद्+ गतोऽर्चितस्, त्रैलोक्य+ लक्ष्म्ये+ कपदं(वँ)

बड़े-बड़े योगेश्वर अपने योगसाधन से पवित्र किये हुए हृदय में जिनके लिये हुए। आसन की कल्पना करते रहते हैं, किंतु फिर भी अपने हृदय सिंहासन पर बिठा नहीं पाते, वही सर्वशक्तिमान् भगवान् यमुनाजी की रेती में गोपियों की ओढ़नी पर बैठ गये। सहस्र सहस्र गोपियों के बीच में उनसे पूजित होकर भगवान् बड़े ही शोभायमान हो रहे थे। परीक्षित तीनों लोकों में— तीनों कालों में जितना भी सौन्दर्य प्रकाशित होता है, वह सब तो भगवान् के बिन्दुमात्र सौन्दर्य का आभास भर है। वे उसके एक मात्र आश्रय हैं ॥ 14 ॥

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं(म्)

सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ।

सं(म्)स्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः(स्)

सं(म्)स्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ 15॥

सहासली+ लेक्षण+ विभ्रम+ भ्रुवा, सं(म्)स्पर्शनेनाङ्+ ककृताङ्+ घ्रिहस्तयोः(स्)

भगवान् श्रीकृष्ण अपने इस अलौकिक सौन्दर्य के द्वारा उनके प्रेम और आकाङ्क्षा को और भी उभाड़ रहे थे। गोपियों ने अपनी मन्द मन्द मुसकान, विलासपूर्ण चितवन और तिरछी भौहों से उनका सम्मान किया। किसी ने उनके चरण कमलों को अपनी गोद में रख लिया, तो किसी ने उनके कर कमलों को। वे उनके संस्पर्श का आनन्द लेती हुई कभी-कभी कह उठती थीं- कितना सुकुमार है, कितना मधुर है। इसके बाद श्रीकृष्ण के छिप जाने से मन-ही-मन तनिक रूठकर उनके मुँह से ही उनका दोष स्वीकार कराने के लिये वे कहने लगीं ॥ 15 ॥

गोप्य ऊचुः

भजतोऽनुभजन्त्येक, एक एतद्विपर्ययम् ।

नोभयां(म्)श्च भजन्त्येक, एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ 16॥

भजतो+ ऽनुभजन् + त्येक, एतद्+ विपर्ययम्

गोपियों ने कहा - नटनागर ! कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, जो प्रेम करने वालों से ही प्रेम करते हैं और कुछ लोग प्रेम न करने वालों से भी प्रेम करते हैं। परंतु कोई-कोई दोनों ही प्रेम नहीं करते प्यारे। इन तीनों में तुम्हें कौन-सा अच्छा लगता है ? ॥ 16 ॥

श्रीभगवानुवाच

मिथो भजन्ति ये सख्यः(स्), स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते ।

न तत्र सौहृदं(न्) धर्मः(स्), स्वार्थार्थं(न्) तद्धि नान्यथा ॥ 17॥

स्वार्थैकान्+ तोद्यमा

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा- मेरी प्रिय सखियों जो प्रेम करने पर प्रेम करते हैं, उनका तो सारा उद्योग स्वार्थ को लेकर है। लेन-देनमात्र है। न तो उनमें सौहार्द है और न तो धर्म। उनका प्रेम केवल स्वार्थ के लिये हो है; इसके अतिरिक्त उनका और कोई प्रयोजन नहीं है ॥ 17 ॥

भजन्त्यभजतो ये वै, करुणाः(फ्) पितरो यथा ।

धर्मो निरपवादोऽत्र , सौहृदं(ञ्) च सुमध्यमाः ॥ 18॥

भजन्त्य+ भजतो, निर+ पवादोऽत्र

सुन्दरियों जो लोग प्रेम न करने वाले से भी प्रेम करते हैं-जैसे स्वभाव से ही करुणाशील सज्जन और माता-पिता-उनका हृदय सौहार्द से, हितैषिता से भरा रहता है और सच पूछो, तो उनके व्यवहार में निश्छल सत्य एवं पूर्ण धर्म भी है ॥ 18 ॥

भजतोऽपि न वै केचिद् - भजन्त्यभजतः(ख्) कुतः ।

आत्मारामा ह्याप्तकामा, अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ 19॥

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करने वालों से भी प्रेम नहीं करते, न प्रेम करने वालों का तो उनके सामने कोई प्रश्न ही नहीं है। ऐसे लोग चार प्रकार के होते हैं। एक तो वे, जो अपने स्वरूप में ही मस्त

रहते हैं जिनको दृष्टि में कभी द्वैत भासता ही नहीं दूसरे वे, जिन्हें द्वैत तो भासता है, परन्तु जो कृतकृत्य हो चुके हैं: उनका किसी से कोई प्रयोजन ही नहीं है। तीसरे वे हैं, जो जानते ही नहीं कि हम से कौन प्रेम करता है; और चौथे वे हैं, जो जान-बूझकर अपना हित करने वाले परोपकारी गुरुतुल्य लोगों से भी द्रोह करते हैं, उनको सताना चाहते हैं ॥ 19 ॥

नाहं(न्) तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्
भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।
यथाधनो लब्धधने विनष्टे
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥ 20॥

भजाम् + यमीषा+ मनुवृत्ति+ वृत्तये, तच्चिन् + तयान्यन्+ निभृतो

गोपियों! मैं तो प्रेम करने वालों से भी | प्रेम का वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा करना चाहिये। मैं ऐसा केवल इसी लिये करता हूं कि उनकी चित्तवृत्ति और भी मुझ में लगे, निरन्तर लगी ही रहे। जैसे निर्धन पुरुष को कभी बहुत-सा धन मिल जाय और फिर खो जाय तो उसका हृदय खोये हुए धनकी चिन्ता से भर जाता है, वैसे ही मैं भी मिल-मिलकर छिप-छिप जाता हूँ ॥ 20 ॥

एवं(म्) मदर्थोज्झितलोकवेद-
स्वानां(म्) हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मया परोक्षं(म्) भजता तिरोहितं(म्)
मासूयितुं(म्) मार्हथ तत् प्रियं(म्) प्रियाः ॥ 21॥

मदर्थोज्+ झितलो+ कवेद, मय्यनु+ वृत्तयेऽ+ बलाः

गोपियों ! इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोगों ने मेरे लिये लोक मर्यादा, वेदमार्ग और अपने सगे-सम्बन्धियों को भी छोड़ दिया है। ऐसी स्थिति में तुम्हारी मनोवृत्ति और कहीं न जाय अपने सौन्दर्य और सुहाग को चिन्ता न करने लगे, मुझमें ही लगी रहे—इसीलिये परोक्षरूप से तुम लोगों से प्रेम करता हुआ ही मैं छिप गया था। इसलिये तुम लोग मेरे प्रेम में दोष मत निकालो। तुम सब मेरी प्यारी हो और मैं तुम्हारा प्यारा हूँ ॥ 21 ॥

न पारयेऽहं(न्) निरवद्यसंयुजां(म्)
स्वसाधुकृत्यं(व्) विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृं(ङ्)खलाः(स्)
सं(व्)वृश्च्य तद् वः(फ्) प्रतियातु साधुना ॥ 22॥

दुर्जरगे+ हश्रृं(ङ्)खलाः(स्)

मेरी प्यारी गोपियों ! तुमने मेरे लिये घर-गृहस्थी की उन बेड़ियों को तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े-बड़े योगी यति भी नहीं तोड़ पाते। मुझसे तुम्हारा यह मिलन, यह आत्मिक संयोग सर्वथा निर्मल और सर्वथा निर्दोष है। यदि मैं अमर शरीर से- अमर जीवन से अनन्त काल तक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्याग का

बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं जन्म-जन्म के लिये तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभाव से, प्रेम से मुझे उऋण कर सकती हो। परन्तु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ ॥ 22 ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)
दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां(ङ्) गोपीसान्त्वनं(न्) नाम द्वात्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

रास पंचाध्याय(10.33)

भक्तों मे ज्यों गोपी श्रेष्ठ, मुनियों में ज्यों व्यास।
पुराणों में ज्यों भागवतम्, लीला में महारास।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्॥

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इत्थं(म्) भगवतो गोप्यः(श्), श्रुत्वा वाचः(स्) सुपेशलाः ।
जहुर्विरहजं(न्) तापं(न्), तदङ्गोपचिताशिषः ॥ 1॥

तदङ्गो+ पचिताशिषः

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- राजन् ! गोपियाँ भगवान की इस प्रकार प्रेम भरी सुमधुर वाणी सुन कर जो कुछ विरहजन्य ताप शेष था, उससे भी मुक्त गयीं और सौन्दर्य-माधुर्यनिधि प्राण प्यारे के अङ्ग-सङ्ग से सफल मनोरथ हो गयीं ॥ 1 ॥

तत्रारभत गोविन्दो, रासक्रीडामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नैरन्वितः(फ्) प्रीतै- रन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ 2॥

स्त्री+ रत्नै+ रन्वितः(फ्), रन्योन् + याबद्ध+ बाहुभिः

भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेयसी और सेविका गोपियाँ एक-दूसरे की बाँह-में-बाँह डाले खड़ी थीं। उन स्त्रीरत्नों के साथ यमुनाजी के पुलिन पर भगवान ने अपनी रसमयी रास क्रीड़ा प्रारम्भ की ॥ 2 ॥

रासोत्सवः(स्) सम्प्रवृत्तो, गोपीमण्डलमण्डितः ।

योगेश्वरेण कृष्णेन, तासां(म्) मध्ये द्वयोर्द्वयोः ।

प्रविष्टेन गृहीतानां(ङ्), कण्ठे स्वनिकटं(म्) स्त्रियः ॥ 3॥

द्वयोर् + द्वयोः

यं(म्) मन्येरन् नभस्तावद्- विमानशतसं(ङ्)कुलम् ।

दिवौकसां(म्) सदाराणा- मौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ 4॥

मौत्सुक्या+ पहृतात्+ मनाम्

सम्पूर्ण योगों के स्वामी भगवान श्रीकृष्ण दो-दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गये और उनके गले में अपना हाथ डाल दिया। इस प्रकार एक गोपी और एक श्रीकृष्ण, यही क्रम था। सभी गोपियाँ ऐसा अनुभव करती थीं कि हमारे प्यारे तो हमारे ही पास हैं। इस प्रकार सहस्र-सहस्र गोपियों से शोभायमान भगवान श्रीकृष्ण का दिव्य रासोत्सव प्रारम्भ हुआ। उस समय आकाश में शत-शत विमानों की भीड़ लग गयी। सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियों के साथ वहाँ आ पहुँचे। रासोत्सव के दर्शनकी लालसा से, उत्सु कता से उनका मन उनके वश में नहीं था ॥ 3-4 ॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्- निपेतुः(फ्) पुष्पवृष्टयः ।

जगुर्गन्धर्वपतयः(स्), सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ 5॥

जगुर्+ गन्धर्व+ पतयः(स्), सस्त्रीकास्+ तद्यशोऽ+ मलम्

स्वर्ग की दिव्य दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं। स्वर्गीय पुष्पों की वर्षा होने लगी। गन्धर्वगण अपनी-अपनी पत्नियों के साथ भगवान के निर्मल यश का गान करने लगे ॥ 5 ॥

वलयानां(न्) नूपुराणां(ङ्), किं(ङ्)किणीनां(ञ्) च योषिताम् ।

सप्रियाणामभूच्छब्दस्- तुमुलो रासमण्डले ॥ 6॥

सप्रियाणा+ मभूच्+ छब्दस्

रास मण्डल में सभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्याम सुन्दर के साथ नृत्य करने लगीं। उनकी कलाइयों के कंगन, पैरों के पायजेब और करधनी के छोटे-छोटे घुँघरू एक साथ बज उठे। असंख्य गोपियाँ थीं, इस लिये यह मधुर ध्वनि भी बड़े ही जोर की हो रही थी ॥ 6 ॥

तत्रातिशुशुभे ताभिर्- भगवान् देवकीसुतः ।

मध्ये मणीनां(म्) हैमानां(म्), महामरकतो यथा ॥ 7॥

महा+ मरकतो

यमुनाजी की रमणरेती पर व्रजसुन्दरियों के बीच में भगवान श्रीकृष्ण की बड़ी अनोखी शोभा हुई। ऐसा जान पड़ता था, मानो अगणित पीली-पीली दमकती हुई सुवर्ण-मणियों के बीच में ज्योतिर्मयी नील मणि चमक रही हो ॥ 7 ॥

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः(स्) सस्मितैर्भ्रूविलासैर्-
भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः(ख्) कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः(ख्) कबररशनाग्रन्थयः(ख्) कृष्णवध्वो,
गायन्त्यस्तं(न्) तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ 8॥

पादन्यासैर् + भुज+ विधुतिभिः(स्), सस्मितैर्+ भ्रूविलासैर्
भज्यन्+ मध्यैश्+ चलकुचपटैः(ख्), कुण्डलैर्+ गण्डलोलैः
स्विद्यन्+ मुख्यः(ख्), कबर+ रशना+ ग्रन्थयः(ख्), गायन्+ त्यस्तं(न्)

नृत्य के समय गोपियाँ तरह-तरह से ठुमक ठुमुक कर अपने पाँव कभी आगे बढ़ातीं और कभी पीछे हटा लेतीं। कभी गति के अनुसार धीरे-धीरे पाँव रखतीं, तो कभी बड़े वेग से; कभी चाक की तरह घूम जातीं, कभी अपने हाथ उठा-उठा कर भाव बतातीं, तो कभी विभिन्न प्रकार से उन्हें चमकातीं। कभी बड़े कलापूर्ण ढंग से मुसकरातीं, तो कभी भौंहें मटकातीं। नाचते-नाचते उनकी पतली कमर ऐसी लचक जाती थी, मानो टूट गयी हो। झुकने, बैठने, उठने और चलने की फुर्ती से उनके स्तन हिल रहे थे तथा वस्त्र उड़े जा रहे थे। कानों के कुण्डल हिल-हिल कर कपोलों पर आ जाते थे। नाचने के परिश्रम से उनके मुँह पर पसीने की बूँदें झलकने लगी थीं। केशों की चोटियाँ कुछ ढीली पड़ गयी थीं। नीवी की गाँठे खुली जा रही थीं। इस प्रकार नटवर नन्दलाल की परम प्रेय सी गोपियाँ उनके साथ गा-गा कर नाच रही थीं। परीक्षित्! उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो बहुत-से श्रीकृष्ण तो साँवले साँवले मेघ मण्डल हैं और उनके बीच-बीच में चमकती हुई गोरी गोपियाँ बिजली है। उनकी शोभा असीम थी ॥ 8॥

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना, रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता, यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ 9॥

उच्चैर् + जगुर्नृत्य+ माना, कृष्णा+ भिमर्श+ मुदिता, यद्+ गीतेने+ दमावृतम्

गोपियों का जीवन भगवान की रति है, प्रेम है। वे श्रीकृष्ण से सटकर नाचते-नाचते ऊँचे स्वर से मधुर गान कर रही थीं। श्रीकृष्ण का संस्पर्श पा-पाकर और भी आनन्द मग्न हो रही थीं। उनके राग-रागिनियों से पूर्ण गान से यह सारा जगत् अब भी गूँज रहा है ॥ 9 ॥

काचित् समं(म्) मुकुन्देन, स्वरजातीरमिश्रिताः ।
उन्निन्ये पूजिता तेन, प्रीयता साधु साध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये, तस्यै मानं(ञ्) च बह्वदात्॥ 10॥

स्व+ रजाती+ रमिश्रिताः,ध्रुव+ मुन्निन्ये,

कोई गोपी भगवान के साथ उनके स्वर में स्वर मिलाकर गा रही थी। वह श्रीकृष्ण के स्वर की अपेक्षा और भी ऊँचे स्वर से राग अलापने लगी। उसके विलक्षण और उत्तम स्वर को सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न

हुए और वाह वाह करके उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी राग को एक दूसरी सखी ने ध्रुपद में गाया। उसका भी भगवान ने बहुत सम्मान किया ॥ 10 ॥

काचिद् रासपरिश्रान्ता, पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ।

जग्राह बाहुना स्कन्धं(म्), श्लथद्वलयमल्लिका ॥ 11॥

पार्श्वस्+ थस्य, श्लथद्+ वलय+ मल्लिका

एक गोपी नृत्य करते-करते थक गयी। उसकी कलाइयों से कंगन और चोटियों से बेला के फूल खिसक ने लगे। तब उसने अपने बगल में ही खड़े मुरली मनोहर श्याम सुन्दर के कंधे को अपनी बाह से कस कर पकड़ लिया ॥ 11 ॥

तत्रैकां(म्)सगतं(म्) बाहुं(ङ्), कृष्णस्योत्पलसौरभम् ।

चन्दनालिप्तमाघ्राय, हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥ 12॥

कृष्णस् + योत्पल+ सौरभम्, चन्दना+ लिप्त+ माघ्राय

भगवान श्रीकृष्ण ने अपना एक हाथ दूसरी गोपी के कंधे पर रख रखा था। वह स्वभाव से तो कमल के समान सुगन्ध से युक्त था ही, उस पर बड़ा सुगन्धित चन्दन का लेप भी था। उसकी सुगन्ध से वह गोपी पुलकित हो गयी, उसका रोम-रोम खिल उठा। उसने झटसे उसे चूम लिया ॥ 12 ॥

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्त- कुण्डलत्विषमण्डितम् ।

गण्डं(ङ्) गण्डे सन्दधत्या, अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥ 13॥

कस्याश् + चिन्नाट्य+ विक्षिप्त, कुण्डलत्+ विषमण्डितम्, अदात्+ ताम्बू+ लचर्वितम्

एक गोपी नृत्य कर रही थी। नाचने के कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे, उनकी छटा से उसके कपोल और भी चमक रहे थे। उसने अपने कपोलों को भगवान श्रीकृष्ण के कपोल से सटा दिया और भगवान ने उसके मुँह में अपना चबाया हुआ पान दे दिया ॥ 13 ॥

नृत्यन्ती गायती काचित्- कूजन्नूपुरमेखला ।

पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं(म्), श्रान्ताधात् स्तनयोः(श्) शिवम् ॥ 14॥

कूजन्+ नूपुर+ मेखला, पार्श्वस्+ थाच्युत+ हस्ताब्जं(म्)

कोई गोपी नूपुर और करधनी के घुँघरूओंको झनकारती हुई नाच और गा रही थी। वह जब बहुत थक गयी, तब उसने अपने बगल में ही खड़े श्याम सुन्दर के शीतल कर कमल को अपने दोनों स्तनों पर रख लिया ॥ 14 ॥

गोप्यो लब्ध्वाच्युतं(ङ्) कान्तं(म्), श्रिय एकान्तवल्लभम् ।

गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां(ङ्), गायन्त्यस्तं(वँ) विजह्निरे ॥ 15॥

गृही+ तकण्ठ्यस्+ तद्+ दोर्भ्यां(ङ्)

परीक्षित्! गोपियों का सौभाग्य लक्ष्मी जी से भी बढ़कर है। लक्ष्मी जी के परम प्रियतम एकान्त वल्लभ भगवान श्रीकृष्ण को अपने परम प्रियतम के रूप में पाकर गोपियाँ गान करती हुई उनके साथ विहार करने लगीं। भगवान श्रीकृष्ण ने उनके गलो को अपने भुजपाश में बांध रखा था, उस समय गोपियों की बड़ी अपूर्व शोभा थी ॥ 15 ॥

कर्णोत्पलालकविटं(ङ्)ककपोलघर्म-

वक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।

गोप्यः(स्) समं(म्) भगवता ननृतुः(स्) स्वकेश-

स्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ 16॥

कर्णोत् + पलाल+ कविटं(ङ्)+ ककपो+ लघर्म, वलयनू+ पुरघो+ षवाद्यैः,

स्रस्+ तस्रजो, भ्रमरगा+ यकरा+ सगोष्ठ्याम्

उनके कानों में कमल के कुण्डल शोभा यमान थे। घुँघराली अलके कपोलों पर लटक रही थीं। पसीने की बूँदें झलक ने से उनके मुख की छटा निराली ही हो गयी थी। वे रास मण्डल में भगवान श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही थीं। उनके कंगन और पायजेबों के बाजे बज रहे थे। और उनके ताल-सुर में अपना सुर मिलाकर गा रहे थे। और उनके जूड़ों तथा चोटियों में गुंथे हुए फूल गिरते जा रहे थे ॥ 16 ॥

एवं(म्) परिष्वङ्गकराभिमर्श-

स्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्-

यथार्भकः(स्) स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥ 17॥

परिष्वङ्+ गकराभिमर्श, स्निग्धे+ क्षणोद्+ दामविला+ सहासैः, स्वप्रतिबिम् + बविभ्रमः

परीक्षित् | जैसे नन्हा सा शिशु निर्विकार भावसे अपनी परछाई के साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपने हृदय से लगा लेते, कभी हाथ से उनका अङ्ग स्पर्श करते, कभी प्रेम भरी तिरछी चितवन से उनकी ओर देखते तो कभी लीला से उन्मुक्त हँसी हँसने लगते। इस प्रकार उन्होंने व्रजसुन्दरियों के साथ क्रीडा की, विहार किया ॥ 17 ॥

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः(ख्),

केशान् दुकूलं(ङ्) कुचपट्टिकां(वँ) वा ।

नाञ्जः(फ्) प्रतिव्योढुमलं(वँ) व्रजस्त्रियो,

विस्रस्तमालाभरणाः(ख्) कुरूद्वह ॥ 18॥

तदङ्+ गसङ्ग+ प्रमुदा+ कुलेन्द्रियाः(ख्), विस्रस्+ तमाला+ भरणाः(ख्)

परीक्षित्! भगवान के अङ्ग का संस्पर्श प्राप्त करके गोपियों की इन्द्रियाँ प्रेम और आनन्द से विह्वल हो गयीं। उनके केश बिखर गये। फूलों के हार टूट गये और गहने अस्त व्यस्त हो गये। वे अपने केश, वस्त्र और कंचुकी को भी पूर्णतया सँभाल ने में असमर्थ हो गयीं ॥ 18 ॥

कृष्णविक्रीडितं(वँ) वीक्ष्य, मुमुहुः(ख्) खेचरस्त्रियः ।

कामार्दिताः(श्) शशां(ङ्)कश्च, सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ 19॥

कृष्ण+ विक्रीडितं(वँ), खेचर+ स्त्रियः

भगवान श्रीकृष्ण की यह रास क्रीडा देख कर स्वर्ग की देवाङ्गनाएँ भी मिलन की कामना से मोहित हो गयीं और समस्त तारों तथा ग्रहों के साथ चन्द्रमा चकित, विस्मित हो गये ॥ 19 ॥

कृत्वा तावन्तमात्मानं(यँ), यावतीर्गोपयोषितः ।

रेमे स भगवां(म्)स्ताभि- रात्मारामोऽपि लीलया ॥ 20॥

तावन् + तमात् + मानं(यँ), यावतीर् + गोपयोषितः

परीक्षित्। यद्यपि भगवान आत्माराम हैं- उन्हें अपने अतिरिक्त और किसी की भी आवश्यकता नहीं है- फिर भी उन्होंने जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण किये और खेल-खेल में उनके साथ इस प्रकार विहार किया ॥ 20 ॥

तासामतिविहारेण, श्रान्तानां(वँ) वदनानि सः ।

प्रामृजत् करुणः(फ्) प्रेम्णा, शन्तमेनाङ्गपाणिना ॥ 21॥

तासा+ मतिविहारेण, शन्तमेनाङ्+ गपाणिना

जब बहुत देर तक गान और नृत्य आदि विहार करने के कारण गोपियाँ थक गयीं, तब करुणामय भगवान श्रीकृष्ण ने बड़े प्रेम से स्वयं अपने सुखद कर कमलों के द्वारा उनके मुँह पौधे ॥ 21 ॥

गोप्यः(स्) स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्-

गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ।

मानं(न्) दधत्य ऋषभस्य जगुः(ख्) कृतानि

पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ 22॥

स्फुरत् + पुरट+ कुण्डल+ कुन्तलत्+ विड्, सुधितहा+ सनिरी+ क्षणेन, तत्कररुहस्+ पर्शप्रमोदाः

परीक्षित्। भगवान के कर कमल और नखस्पर्श से गोपियों को बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपने उन कपोलों के सौन्दर्य से, जिन पर सोने के कुण्डल झिल मिला रहे थे और घुँघराली अल के लटक रही थीं, तथा उस प्रेम भरी चितवन से, जो सुधा से भी मीठी मुसकान से उज्ज्वल हो रही थी, भगवान श्रीकृष्ण का सम्मान किया और प्रभु की परम पवित्र लीलाओंका गान करने लगीं ॥ 22 ॥

ताभिर्युतः(श्) श्रममपोहितुमङ्गसङ्ग-

घृष्टस्रजः(स्) स कुचकुं(ङ्)कुमरं(ञ्)जितायाः ।

गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः(श्),

श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ 23॥

श्रम+ मपो+ हितुमङ्+ गसङ्ग, गन्धर्वपा+ लिभिर+ नुद्रुत, गजी+ भिरिभरा+ डिव

इसके बाद जैसे थका हुआ गजराज किनारों को तोड़ता हुआ हथिनियों के साथ जल में घुसकर क्रीडा करता है, वैसे ही लोक और वेद की मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले भगवान ने अपनी थकान दूर करने के लिये गोपियों के साथ जल क्रीडा करने के उद्देश्य से यमुना के जल में प्रवेश किया। उस समय भगवान की वनमाला गोपियों के अंग की रगड़ से कुछ कुचल-सी गयी थी और उनके वक्षःस्थल की केसर से वह रंग भी गयी थी। उसके चारों ओर गुनगुनाते हुए और उनके पीछे-पीछे इस प्रकार चल रहे थे, मानो गन्धर्वराज उनकी कीर्ति का गान करते हुए पीछे-पीछे चल रहे हो ॥ 23 ॥

सोऽम्भस्यलं(यँ) युवतिभिः(फ्) परिषिच्यमानः(फ्),

प्रेम्णेक्षितः(फ्) प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।

वैमानिकैः(ख्) कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो,

रेमे स्वयं(म्) स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ 24॥

सोऽम्भस् + यलं(यँ), प्रहसती+ भिरितस्+ ततोऽङ्ग, कुसुमवर्+ षिभिरी+ ड्यमानो

परीक्षित् यमुनाजल में गोपियों ने प्रेमभरी चितवन से भगवान की और देख-देख कर तथा हँस-हँस कर उनपर इधर-उधर से जल की खूब बौछारें डाली जल उलीच उलीच कर उन्हें खूब - नहलाया। विमानों पर चढ़े हुए देवता पुष्पों की वर्षा करके हुए। उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार यमुना जल में स्वयं आत्मा राम भगवान श्रीकृष्ण ने गजराज के समान जल विहार किया ॥ 24 ॥

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल-

प्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।

चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो

यथा मदच्युद् द्विरदः(ख्) करेणुभिः ॥ 25॥

प्रसू+ नगन्धा+ निलजुष्ट+ दिक्तटे, भृङ्ग+ प्रमदा+ गणावृतो

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण वजयूवतियों और भौरों की भीड़ से घिरे हुए यमुना तट के उप वन में गये। वह बड़ा हो रमणीय था उसके चारों ओर जल और स्थल में बड़ी सुन्दर सुगन्ध वाले फूल खिले हुए थे। उनकी सुवास लेकर मन्द मन्द वायु चल रही थी। उसमें भगवान इस प्रकार विचरण करने लगे, जैसे मदमत्त गजराज हथिनियों के झुंडके साथ घूम रहा हो ॥ 25 ॥

एवं(म्) शशां(ङ्)कां(म्)शुविराजिता निशाः(स्),

स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।

सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः(स्),

सर्वाः(श्) शरॅत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ 26॥

शशां(ङ्)कां(म्)+ शुविराजिता, सत्यकामोऽ+ नुरता+बलागणः,

आत्मन् + यवरुद्ध+ सौरतः(स्),शरत् + काव्यकथा+ रसाश्रयाः

परीक्षित्! शरद्की वह रात्रि जिस के रूप में अनेक रात्रियाँ पुञ्जीभूत हो गयी थीं, बहुत ही सुन्दर थी। चारों ओर चन्द्रमा की बड़ी सुन्दर चाँदनी छिटक रही थी काव्यों में शरद् ऋतु की जिन रस सामग्रियों का वर्णन मिलता है, उन सभी से वह युक्त थी उसमें भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी प्रेयसी गोपियों के साथ यमुना के पुलिन, यमुना जी और उनके उपवन में विहार किया। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान सत्य सङ्कल्प हैं। यह सब उनके चिन्मय सङ्कल्प की ही चिन्मयी लोला है और उन्होंने इस लीला में काम भाव को, उसकी चेष्टाओं को तथा उसकी क्रिया को सर्वथा अपने अधीन कर रखा था, उन्हें अपने-आप में कैद कर रखा था ॥ 26 ॥

राजोवाच

सं(म्)स्थापनाय धर्मस्यॅ, प्रशमायेतरॅस्य च ।

अवतीर्णो हि भगवा- नं(म्)शेन जगदीश्वरः ॥ 27॥

प्रशमा+ येतरस्य

राजा परीक्षित्ने पूछा-भगवन! भगवान श्रीकृष्ण सारे जगत् के एकमात्र स्वामी है। उन्होंने अपने अंश श्रीबलराम जी के सहित पूर्णरूप में अवतार ग्रहण किया था। उनके अवतार का उद्देश्य ही यह था कि धर्मकी स्थापना हो और अधर्म का नाश ॥ 27 ॥

स कथं(न्) धर्मसेतूनां(वँ्), वॅक्ता कर्ताभिरॅक्षिता ।

प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन्, परदाराभिमर्शनम् ॥ 28॥

परदारा+ भिमर्शनम्

ब्रह्मन् वे धर्ममर्यादा के बनाने वाले, उपदेश करने वाले और रक्षक थे। फिर उन्होंने स्वयं धर्मके विपरीत परस्त्रियों का स्पर्श कैसे किया ॥ 28 ॥

आप्तकामो यदुपतिः(ख्), कृतवान् वै जुगुॅप्सितम् ।

किमभिॅप्राय एतं(न्) नः(स्), सं(म्)शयं(ञ्) छिॅन्धि सुॅव्रत ॥ 29॥

जुगुप् + सितम्

मैं मानता हूँ कि भगवान श्रीकृष्ण पूर्णकाम थे, उन्हें किसी भी वस्तु की कामना नहीं थी, फिर भी उन्होंने किस अभिप्राय यह निन्दनीय कर्म किया ? परम ब्रह्मचारी मुनीश्वर! आप कृपा कर के मेरा यह सन्देह मिटाइये ॥ 29 ॥

श्रीशुक उवाच

धर्मव्यॅतिक्रमो दृॅष्ट, ईश्वराणां(ञ्) च साहसम् ।

तेजीयसां(न्) न दोषाय, वह्नेः(स्) सर्वभुजो यथा ॥ 30॥

धर्म+ व्यति+ क्रमो

श्रीशुकदेव जी कहते हैं-सूर्य, अग्नि आदि ईश्वर कभी-कभी धर्म का उल्लंघन और साहस का काम करते देखे जाते हैं। परंतु उन कामों से उन तेजस्वी पुरुषों को कोई दोष नहीं होता। देखो, अग्नि सब कुछ खा जाता है, परन्तु उन पदार्थो के दोष से लिप्त नहीं होता ॥ 30 ॥

नैतत् समाचरेज्जातु, मनसापि ह्यनीश्वरः ।

विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्- यथा रुद्रोऽब्धिजं(वँ) विषम् ॥ 31॥

समाचरेज्+ जातु, विनश्यत्+ याचरन्

जिन लोगो में ऐसी सामर्थ्य नहीं है, उन्हें मनसे भी वैसी बात कभी नहीं सोचनी चाहिये, शरीर से करना तो दूर रहा। यदि मूर्खता वश कोई ऐसा काम कर बैठे, तो उसका नाश हो जाता है। भगवान शङ्कर ने हलाहल विष पी लिया था, दूसरा कोई पिये तो वह जल कर भस्म हो जायगा ॥ 31 ॥

ईश्वराणां(वँ) वचः(स्) सत्यं(न्), तथैवाचरितं(ङ्) क्वचित् ।

तेषां(यँ) यत् स्ववचोयुक्तं(म्), बुद्धिमां(म्)स्तत् समाचरेत् ॥ 32॥

स्व+ वचोयुक्तं(म्)

इसलिये इस प्रकार के जो शङ्कर आदि ईश्वर है, अपने अधिकारके अनुसार उनके वचन को ही सत्य मानना और उसी के अनुसार आचरण करना चाहिये। उनके आचरण का अनुकरण तो कहीं-कहीं ही किया जाता है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुष का चाहिये कि उनका आचरण उनके उपदेश के अनुकूल हो, उसको जीवन में उतारे ॥ 32 ॥

कुशलाचरितेनैषा- मिह स्वार्थो न विद्यते ।

विपर्ययेण वानर्थो, निरहं(ङ्)कारिणां(म्) प्रभो ॥ 33॥

कुशला+ चरिते+ नैषा

परीक्षित् ! वे सामर्थ्यवान् पुरुष अहङ्कार हीन होते है, शुभ कर्म करने में उनका कोई सांसारिक स्वार्थ नहीं होता और अशुभ कर्म करने में अनर्थ नहीं होता। वे स्वार्थ और अनर्थ से ऊपर उठे होते हैं ॥ 33 ॥

किमुताखिलसत्त्वानां(न्), तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ।

ईशितुश्चेशितव्यानां(ङ्), कुशलाकुशलान्वयः ॥ 34॥

किमुता+ खिल+ सत्त्वानां(न्), तिर्यङ्+ मर्त्यदिवौ+ कसाम्

ईशितुश् + चेशितव्यानां(ङ्), कुशला+ कुशलान्वयः

जब उन्हींके सम्बन्ध में ऐसी बात है तब जो पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता आदि समस्त चराचर जीवों के एक मात्र प्रभु सर्वेश्वर भगवान हैं, उनके साथ मानवीय शुभ और अशुभ का सम्बन्ध कैसे जोड़ा जा सकता है ॥ 34 ॥

यत्पादपं(ङ्)कजपरागनिषेवतृप्ता,

योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ।

स्वैरं(ञ्) चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्-

तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः(ख्) कुत एव बन्धः ॥ 35॥

यत्पा+ दपं(ङ्)कजपरा+ गनिषे+ वतृप्ता,

योग+ प्रभाव+ विधुता+ खिलकर्मबन्धाः, तस्येच्+ छयाऽऽत्+ तवपुषः(ख्)

जिन के चरणकमलो के रजका सेवन करके भक्तजन तृप्त हो जाते हैं, जिनके साथ योग प्राप्त करके उसके प्रभाव से योगीजन अपने सारे कर्मबन्धन काट डालते हैं और विचारशील ज्ञानीजन जिनके तत्त्व का विचार करके तत्स्वरूप हो जाते हैं तथा समस्त कर्म- बन्धन से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरते हैं, वे ही भगवान् अपने भक्तों की इच्छा से अपना चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करते हैं. तब भला, उनमें कर्म बन्धन की कल्पना ही कैसे हो सकती है ॥ 35 ॥

गोपीनां(न्) तत्पतीनां(ञ्) च, सर्वेषामेव देहिनाम् ।

योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः(ख्), क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ 36॥

योऽन्तश् + चरति

गोपियों के, उनके पतियों के और सम्पूर्ण शरीरधारियों के अन्तःकरणों में जो आत्मा रूप से विराजमान हैं, जो सबके साक्षी और परमपति हैं, वही तो अपना दिव्य चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करके यह लीला कर रहे हैं ॥ 36 ॥

अनुग्रहाय भूतानां(म्), मानुषं(न्) देहमास्थितः ।

भजते तादृशीः(ख्) क्रीडा, याः(श्) श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ 37॥

देह+ मास्थितः

भगवान जीवोंपर कृपा करने के लिये ही अपने को मनुष्य रूप में प्रकट करते हैं और ऐसी लीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर जीव भगवत्परायण हो जाये ॥ 37 ॥

नासूयन् खलु कृष्णाय, मोहितास्तस्य मायया ।

मन्यमानाः(स्) स्वपार्श्वस्थान्, स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥ 38॥

स्वपार्श्व+ स्थान्

व्रजवासी गोपोने भगवान् श्रीकृष्ण में तनिक भी दोषबुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमायासे मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियों हमारे पास ही हैं ॥ 38 ॥

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते, वासुदेवानुमोदिताः ।

अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः(स्), स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥ 39॥

अनिच् + छन्त्यो

ब्रह्मा की रात्रि के बराबर वह रात्रि बीत गयी। ब्राह्म मुहूर्त आया। यद्यपि गोपियों की इच्छा अपने घर लौटने की नहीं थी, फिर भी भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञासे वे अपने-अपने घर चली गयीं। क्योंकि वे अपनी प्रत्येक चेष्टा से, प्रत्येक सङ्कल्प से केवल भगवान को ही प्रसन्न करना चाहती थीं ॥ 39 ॥

विक्रीडितं(वँ) व्रजवधूभिरिदं(ञ्) च विष्णोः(श्),

श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ।

भक्तिं(म्) परां(म्) भगवति प्रतिलभ्य कामं(म्),

हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ 40॥

व्रजवधू+ भिरिदं(ञ्), श्रद्धान् + वितोऽ+ नुशृणुया+ दथ, हृद्रोगमाश्व+ पहिनोत् + यचिरेण

परीक्षित् ! जो धीर पुरुष व्रजयुवतियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण के इस चिन्मय रास-विलास का श्रद्धा के साथ बार बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान के चरणों में परा भक्ति की प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदय रोग- काम विकार से छुटकारा पा जाता है। उसका कामभाव सर्वदा के लिये नष्ट हो जाता है ॥ 40 ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्(म्)यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं(न्) नाम त्रयस्त्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।